

॥ श्रीश्रीगौरहरिर्जयति ॥

❀ माधुरीवाणी ❀

श्रीश्रीमद्रूपगोस्वामिपाद के शिष्य

श्रीमाधुरीजी विरचिता



प्रकाशक—

बाबा—कृष्णदास ।

प्रकाशितग्रन्थसंख्या—१३१.

श्रीश्रीगौराङ्गविधुर्जयति

श्रीमाधुरीवाणी

श्रीश्रीमद्रूपगोस्वामिपाद के शिष्य

श्रीमाधुरीजी कृता

सम्बत—२०२२

वसन्तपञ्चमी

प्रकाशक—

बाबा कृष्णदास

कुसुमसरोवर

पो०-राधाकुण्ड

जि०-मथुरा

अथ श्रीगौरांगमहाप्रभू की स्तुति



प्रभु अनन्दन जगत बन्दन मेरी ओर निहारिये ॥१॥
 निज दास अपनो जान स्वामी भवसों पार उतारिये ॥२॥
 जय जय निमाई प्रेमदाता प्रान धन सब दुख हरन ॥३॥
 सब मिल नित्याईके अनुजके चरन की गह लो सरन ॥४॥
 जय जय प्रभु राजीवलोचन पापमोचन प्रेम के अवतार हो ॥५॥
 जय जय नमामी कर प्रणाम प्रानके आधार हो ॥६॥
 नदिया विहारी पद कमल मम हृदय में अनुराग हो ॥७॥
 जय गौर षडभुज महाप्रभू भक्ती के प्रादुरभाव हो ॥८॥
 नदिया नगर पावन कियो तारन पतित जग से कियो ॥९॥
 राजा को संशय दूर कर षडभुजा धर दर्शन दियो ॥१०॥
 कलि में प्रभु अवतार ले उद्धार पतितन को कियो ॥११॥
 काजी जगाई से पातित को चित्त आकर्षण कियो ॥१२॥
 धर रूप नरहर को प्रभु छातीपै चढ़ दर्शन दियो ॥१३॥
 गङ्गा किनारे पै मघाई नाम प्रभु निर्भय लियो ॥१४॥
 नित प्रातके उठते समय भक्ति से जोलों कोई गावही ॥१५॥
 कहै गौरगोवर्धन दोऊ निश्चय परम पद पाव ही ॥१६॥

॥ इतिवन्दना ॥



भूमिका

—संक्षेप—

ब्रज मथुरा—गोवर्द्धन मार्ग पर अर्लींग नामक ग्राम के निकट ढाई कोस दक्षिण—दिशा में माधुरीकुण्ड स्थित है। गोस्वामी श्रीनारायणभट्टजी द्वारा विरचित “ब्रजभक्तिविलास” ग्रन्थ में श्रीराधिका की अति सुहावनी माधुरी नाम्नी सखि के विहारस्थल के कारण इस स्थान व कुण्ड का नाम माधुरीकुण्ड कहा गया है। कुण्ड के पास ही एक मन्दिर है जो मौढल्ला कृष्णगंगा मथुरा के महन्त की देख रेख में है।

ब्रजमाधुरी सागर में श्रीमाधुरीजी का स्थान अत्यधिक उच्च है। आप श्रीरूपगोस्वामी चरण के शिष्य, ब्रजनिष्ठ, परम रमिक महात्मा हुए। आपके नाम से ही उक्त स्थान का नाम माधुरी-कुण्ड पड़ा। वहीं पर आप का भजन-स्थान है। वाणीकार के जन्म तथा मृत्यु के समय का ठीक ठीक ज्ञान नहीं किन्तु “केलि-माधुरी” नामक ग्रन्थ के अन्तिम दोहे से यह निर्विवाद सिद्ध है कि आप का स्थितकाल सम्बत सोलहसौ से लेकर सम्बत १७०० के अन्तर्गत है।

दो०—सम्बत सोलहसौ अस्मी सात अधिक हिय धार।

केलिमाधुरी छटि लिखी आवण वदि बुधवार ॥

आप के द्वारा विरचित ग्रन्थों से निश्चित पता चलता है कि आप श्रीरूपगोस्वामी जी के कृपापात्र शिष्य थे।

दो०—रूपमञ्जरी प्रेम सों कहत वचन सुखरास।

श्रीवंशीवट माधुरी होहु सनातन वास ॥

वह रूपमञ्जरी ही—ब्रज में गौरपरिकर श्रीरूपगोस्वामि करके प्रसिद्ध हुए। आपने केलिमाधुरी में कहा है—

“सदा सनातन रूप विराजै । बरनत ही जिय अति ही लाजै ।

“विपिन सिंधु रस माधुरी कृपा करी निजरूप ।

मुक्ता मधुर विलास के निज कर दिये अनूप ॥”

उनके द्वारा विरचित ग्रन्थ समूह—

(१) उत्कण्ठामाधुरी, (२) वंशीवटविलासमाधुरी, (३) केलि-
माधुरी (४) वृन्दावनविहारमाधुरी (५) दानमाधुरी (६) मान-
माधुरी—अधिकंतु होरीमाधुरी, प्रियाजी की वधाइ आदि फुट-
कर पद । वंशीवटविलासमाधुरी तथा वृन्दावनविहारमाधुरी का
क्रमशः नामान्तर वंशीवटमाधुरी तथा वृन्दावनमाधुरी है । इनके
द्वारा विरचित और भी अनेक पदों की सम्भावना की जाती है ।

आपने हरमाधुरी में अपने उपास्यदेव भगवान् कृष्णचैतन्य
महाप्रभु का मंगलाचरण किया है—यहाँ पर हमें कहना आवश्यक
पड़ा है कि—किसी राधावल्लभी सज्जन ने उत्कण्ठामाधुरी का
“माधुरीदास” इस नाम से छपवा कर यत्र तत्र वितरण किया
है उसमें “श्रीचैतन्यस्वरूप कों मन-वच करों प्रणाम ।

“सदा सनातन पाइये श्रीवृन्दावन धाम ॥”

यहाँ पर—“श्रीहरिवंश स्वरूप कों मन-वच करों प्रणाम”
ऐसा पाठ भेद कर दिया गया । यह एक जवरदस्त गलती है
जो कि ईर्ष्या वश हुई है । अस्तु आगे इस प्रकार गलत प्रचार
नहीं होना चाहिये ।

उत्कण्ठामाधुरी में—३ कवित्त २०३ दोहे हैं । इसमें वाणी
कार की अमहनीय विरहवेदना, उत्कण्ठामयी तीब्रानुरागिता
श्रीपादरघुनाथदामगोस्वामि-विरचित “विलापकुसुमाञ्जली” के
भावों को व्यक्त करती है । उत्कण्ठामाधुरी के १० से ३० तक दोहे
देखिये । विलापकुसुमाञ्जलि में दासगोस्वामीजी ने कहा है—

“त्वदलोकनकालाहिदंशैरिव मृतं जनम् ।

त्वत्पदाब्जमिलल्लाभाभेषजैर्देवि जीवय ॥

देवि ते चरणपद्मदासिकां

विप्रयोगभरैः दावपावकैः ।

दह्यमानतराकायवल्लरीं

जीवय क्षणं निरीक्षणामृतैः ॥

अर्थात्—हे स्वामिनी ! तुम अपने अदर्शन रूप कालसर्प
के तीव्र दंशनों से मृत प्राय इस व्यक्ति को अपने चरण-संयुक्त
लाक्षारस (महावर) रूप अमृत-संजीवनि में जीवित करो ।

हे देवि ! तुम्हारे वियोग रूप दावाग्नि से जलती हुई इस
शरीरलता को दर्शनामृत सींचन के द्वारा वचाओ यदि प्राण-
वल्लभ का सरस आलिङ्गन इस देह में नहीं हुआ तो देहान्तर में
ही अवश्य प्राप्त होगा । यथा—“या होरी के खेल को खेल कहूँ
हूँ जाँउ” इत्यादि ६६ से १०६ दोहे देखिये ।

इस प्रकार तीब्रानुराग न होने से साधक व सिद्धभक्तों को
ब्रजप्राप्ति असम्भव होती है । श्रीलसनातनगोस्वामिजी ने बृह-
द्भागवतामृत नामक ग्रन्थ में गोपकुमार प्रबन्ध छल से ब्रज-
प्राप्ति का पूर्व स्वरूप इस प्रकार बतलाया है कि—

तत्रैवोत्पद्यते दैन्यं तत्प्रेमापि सदा सताम् ।

तत्ताच्छून्यमिवारण्यसरिद्गिर्यादिपश्यताम् ।

सदा हाहारवाक्रान्तवदनानां तथा हृदि ।

महासन्तापदग्धानां स्वप्रियं परिमृग्यताम् ॥

अर्थात्—इष्ट विरह से उन उन अरण्य, सरित्, पर्वतादि
शून्य रूप से दिखने वाले, निरन्तर मुख में हा हा इस प्रकार
रव करने वाले, महान सन्ताप से दग्ध हृदय वाले, अपने प्रिय को
ढूढ़ने वाले साधुओं की दैन्यता होती है जिस से प्रेम उत्पन्न होता
है ।

श्रीपाददासगोस्वामी ने यथार्थ कहा—

व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं गिरीन्द्रोऽजगरायते ।
शून्यायितं गोष्ठं सर्वं जीवातुरहितस्य मे ॥

अर्थात्—प्राणाधार के विरह से मेरे लिये यह राधाकुण्ड वाघ के मुख की भाँति, श्रीगोवर्द्धन पर्वत अजगर सर्प की भाँति अधिकतया समस्त ब्रजप्रदेश शून्य की भाँति प्रतीति हो रही है ।

वंशीवटविलासमाधुरी में ३६ कवित्त, ५ सवैया, १४ रोला, ३२ चौपाई १ सोरठा तथा २२० दोहे हैं । इसमें जमुनातट की सुहावनी-शोभा का एवं प्रिया-प्रियतम के वंशीवटकुञ्ज में विविध मनोहर विलासरस का वर्णन है । उस में एक परम आस्वादीय विषय यह है कि—यमुनाजी में नौका-विहार करने के समय नाव पर श्रीप्रिया जी के कोमल कमल कर्णफूल पर मुग्ध हो कर एक भ्रमर गुंजार करता हुआ घूमने लगा जिस से स्वामिनीजी भयातुर हो कर उसे अपनी सुकुमार भुज-लता द्वारा उड़ाने की चेष्टा करने लगीं परन्तु अपने प्रयास से असफल रहीं । तब श्री-लालता जी ने अपने हस्तकमल से भौरे को उड़ा कर कहा—

“सावधान हूँ प्रिये विकल होत केहि काज ।

मधुसूदन तौ गृह गयौ लीने संग समाज ॥”

इतनी-सी बात सुन कर “हा क्या मेरे प्राणवल्लभ अन्तर्द्वान हो गये हाय में अभागी हूँ, हे मधुसूदन ! हा मधुसूदन ! आप कहाँ चले चये” इस प्रकार उच्चस्वर से विलाप करने लगीं । रसशास्त्र में इस प्रकार भाव को प्रेमवैचित्र्यी अवस्था करके कहा गया है । “उज्ज्वलनीलमणि” आदि देखने से इसका पता चलता है । ब्रज की रासमण्डलियाँ इस माधुरीवाणी से बहुत सी

लीलाएँ चुन चुन कर लीलाकरण के द्वारा भक्तसमाज को सुख दिया करती हैं ।

केलिमाधुरी में ६ कवित्त, ६२ चौपाई, १ छन्द, १ सवैया, ११ सोरठा, १ छप्पै, १५ दोहे एवं ६ रोलाछन्द हैं । इस में प्रिया-प्रियतम की दिव्यकेलि का अलौकिक वर्णन है ।

श्रीवृन्दावनविहारमाधुरी में—१२ कवित्त, २ सवैया, ३१ चौपाई, ३ सोरठा एवं ४५ दोहे हैं । इसमें वृन्दावन का सरस वर्णन है—यथा—

देखहु प्रिये विपिन की शोभा । उपजत है कछु मन की लोभा ।
छाँड़हु लता मान घर संग । है है कछुक रग में भंग ॥
कहुँ सुरंग दारिम सुमनाली । कहुँ रस भरे करक फल पाली ॥
कहुँ तमाल कदम्ब रसाला । वहुँ डोलत मधुपन की माला ॥
कहुँ बोलत कोकिल कल-वानी । लोलत कहुँ लता सरसानी ॥
इन सब का आधार-रूप श्रीरूपगोस्वामीजी के श्लोकों को देखिये—

कचिद्भृङ्गीगीतं कचिदनिलभङ्गीशिशिरता

कचिद्बुल्लीलास्यं कचिदमलमल्लीपरिमलः ।

कचिद्धाराशाली कनकफलपाली रसभरो

हृषीकाणां वृन्दं प्रमोदयति वृन्दावनमिदम् ॥

(विदग्धमाधवनाटक में)

इस माधुरीवाणी में विशेषता यह है कि—इसके प्रत्येक पद श्रीरूपादिक छैः गोस्वामियों के द्वारा विरचित श्लोकों के आधार तथा भाव को लेकर रचा गया है । ग्रन्थवृद्धि के कारण हम यहाँ प्रत्येक पद का समन्वय नहीं कर सके ।

दानमाधुरी में १७ कवित्त, ३ सोरठा, १६ दोहे हैं । इस में रसरज श्रीकृष्ण हास्य-परिहास रसास्वादन के लिये स्वयं दानी बन कर श्रीराधा एवं लालतादि साखियों से दान याचना करते

हैं जिसका विशदवर्णन रूपगोस्वामि-विरचित "दानकेलि-कौमुदी" एवं श्रीरघुनाथदासगास्वामिविरचित "दानकेलिचिन्ता-मणि" आदि ग्रंथों में है।

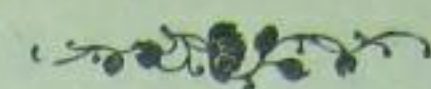
मानमाधुरी में—१६ कवित्त, १५ सवैया, ६ सोरठा ६ होहे हैं। इसमें वर्णित विषय यह है कि—श्रीराधिका अपने प्राणाधार प्रियतम श्रीकृष्ण के श्यामल अंग के कोटि-दामिनी चमकन में अपने श्रीअंग का प्रतिविम्ब देख कर अन्य-नायिका भ्रम से मानिनी हो बैठी। सखियों के बहु प्रकार यत्न से जब मान-शैथिल्य नहीं हुआ तब श्रीललिता की युक्ति से प्रियतम अपने श्रीअंग को महीन वस्त्र से ढक कर उनके चरणों में नमित हो कर बैठ गये। तब श्रीराधाने प्रतिविम्ब को न देख कर मान-शैथिल्य के कारण लज्जित हो कर प्रियतम को आलिङ्गन किया, यह सब लीला "उज्ज्वलनीलमणि" में वर्णित है।

होरीमाधुरी में—६ पद तथा प्रिया वधाई में दो पद प्राप्त हैं।

ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों में माधुरीजी मुख्यतम हैं। मिश्र-बन्धुविनोदकार ने माधुरीजी को साधारण कवियों में जो लिखा है वह अपरिचित एवं विना अनुसन्धान के कारण से है। ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने यह बाणी नहीं देखी होगी कदाचित् देखा भी है तो आद्य प्रान्त पढ़ा ही नहीं। अस्तु यह बाणी रसिकजनों के सामने उपास्थित है।

इसके अतिरिक्त होरीमाधुरी के पद समूह वरसाना, नन्दगाँव आदिक मन्दिरों में रंगीली के समय गाया जाता है। माधुरी की होरी ब्रज में प्रसिद्ध है। ब्रज के प्राचीन भजनानन्दी महात्माओं के पास इसकी हस्तलिखित कापी मौजूद हैं एवं सब कोई इसका पठन पाठन करते हैं।

(कृष्णदासबाबा)



दोहा—श्री चैतन्य स्वरूप को, मन बन्ध करूँ प्रणाम।

सदा सनातन पाइये, श्री वृन्दावन धाम ॥१॥

गौर नाम अरु गौर तनु, अन्तर कृष्ण स्वरूप।

गौर साँवरे दुहुन को, प्रकट एक ही रूप ॥२॥

तिनके चरण प्रताप ते, सर्व सुलभ जग होय।

गौर साँवरे पाइये, आप अपनपौ खोय ॥३॥

वृन्दावन विहरहि सदा, गहे परस्पर बाँह।

लालच तिनके मिलन को, उपजि परो जिय माहि ॥४॥

उत्कंठा अंकुर कहूँ उठ्यो हिय में आय।

ताकी तुम रक्षा करौ, कबहुँ उखरि मति जाय ॥५॥

डुलहि न पवन झकोर ते, जौ लों नहि दृढ़ मूल।

विधन न कोऊ कर सकै, रहहु सदा अनुकूल ॥६॥

पूरणमासी तुम करो, सदा अमृत की सींच।

यह अंकुर भीजो रहै, सदा प्रेम की कींच ॥७॥

अहो विशाखा सहचरी, तुम सब रस की मूल।

यह उत्कंठा बेलि ज्यों, नख सिख फूलै फूल ॥८॥

हो ललितादिक तुम सबै, मिलि सींचौ रस तोय।

यह उत्कंठा माधुरी, बेग सफल ज्यों होय ॥९॥

श्री वृन्दावन स्वामिनी, करि सुदृष्टि इहि ओर।

वृष्टि करौ अनुराग की, कृपा कटाक्षन कोर ॥१०॥



अहो लड़ैती बिन कहे, जानि लेउ जिय बात ।
 चरण तिहारे संग बिन, मोहिं न कछु सुहात ॥११॥
 पलक एक रहे कोटि सम, अल्प कल्प सम होय ।
 जो उपजै जिय में सदा, समझि सकै नहिं कोय ॥१२॥
 कहि कहि काहि सुनाइये, सहि सहि उपजै शूल ।
 रहि रहि जिय ऐसे जरै, दहि दहि उठै दुकूल ॥१३॥
 विरह अग्नि उर में बढ़ी, तप्यौ अवनि तनु जाय ।
 सुरत तेल तापर परै, कहु किहि भांति सिराय ॥१४॥
 यह उत्कंठा की लता, चली बेग मुरझाय ।
 संग दामिनी श्यामघन, जो वरषै नहि आय ॥१५॥
 रोंम रोंम तन जरि उठै, वरि वरि उठै शरीर ।
 कव छिरकौगे आनि कै, कृपा कटाक्षिन नीर ॥१६॥
 गिरि वन पुलिन निकुंज गृह, सकों देखि नहिं नैन ।
 सदा चकित देखत फिरो, कहूँ न धरति चित चैन ॥१७॥
 कालिंदी करवत लगै, चक्र लगै शशि भाय ।
 जो कवहूँ उन सुखन की, परै सुरति जिय आय ॥१८॥
 पवन लगे पाहन मनो, सेज लगै सम भान ।
 भोजन जल ऐसी लगै, गरल कियौ जनु पान ॥१९॥
 फूल लगै फलका हिये, बसन सिलीमुख मोहि ।
 सबहिं सोंज उलटी परी, बिना एक पिय तोहि ॥२०॥

सबै अंधेरी देखिये, जो सत सूर प्रकाश ।
 गौर सांवरे चन्द बिन, नयनन को न हुलास ॥२१॥
 बोलन खेलन हसन सुख, मिटी सबन की आस ।
 जे मन के सब सुख हुते, भये दुखन की रास ॥२२॥
 दुख संकट अरु शूल सब, जो कछु हैं हिय माँहि ।
 देखत ही मुख दुहुन कौ, सबै सुखद ह्वै जाँहि ॥२३॥
 वा मुख देखन को कहो, कीजे कौन उपाय ।
 कहा करों कासों कहों, परी कठिन अति आय ॥२४॥
 ये लोचन आतुर अधिक, उनहिं पीर कछु नाँय ।
 जलते न्यारी मीन ज्यों, तड़फि तड़फि अकुलाय ॥२५॥
 सो०—कान कथा मन ध्यान, रसना नाम आधार धरि ।
 नयनन गति नहिं आन, बिन देखे मुख माधुरी ॥२६॥
 दोहा—गिरि वन पुर बीथिन सबै, रहों निहार निहार ।
 कोऊ कहूँ नहिं पाइये, वा मुख की उनिहार ॥२७॥
 वा मुख की आशा लगी, तजी आस सब जोग ।
 अब स्वासा हूँ तजेगी, जो न बनै संजोग ॥२८॥
 कहा करूँ कासों कहूँ, को बूझे कित जाँउ ।
 बन बन ही डोलत फिरो, बोलत लै लै नाँउ ॥२९॥
 जो बन बन डोलत रहों, बाँध मिलन की फेंट ।
 अनजाने ही होयगी, कहूँ अचानक भेंट ॥३०॥

कोउ नाम तो करन पथ, कहूँ परैगो जाय ।
 बोलत बोलत कबहूँ तो, बोलहिंगे अकुलाय ॥३१॥
 हो प्यारी हो प्राणपति, अहो प्रेमप्र तिपाल ।
 दुख मोचन रोचन सदा, लोचन कमल विशाल ॥३२॥
 ऊँचे सुर सों टेर कै, कहूँ पुकारि पुकारि ।
 कृष्ण कृष्ण गोविंद हरि, रटों सु बारहि बारि ॥३३॥
 हो निकुंज नागरि कुंवरि, नव नेही घनश्याम ।
 नैनन में निम दिन रहो, अहो नैन अभिराम ॥३४॥
 अहो लड़ेती लाड़िली, अलक लड़ी सुकुमार ।
 मन-हरनी तरुनी तनक, दिखरावहु मुख चारु ॥३५॥
 गुणनि अगाधा राधिका, श्री राधा रस धाम ।
 सब सुख साधा पाइये, आधा जाको नाम ॥३६॥
 अहो सलोने साँवरे, सुन्दर सुखद स्वरूप ।
 मनमोहन मोहन हिये, महा मोद को रूप ॥३७॥
 रतिनिधि रसनिधि रूपनिधि, अरु निधि प्रेम हुलास
 गुण आगर नागर नवल, सुख सागर की रास ॥३८॥
 नवल किशोरी भामिनी, गोरी भोरी वाम ।
 महा मोहनी माधुरी, मोहन मन अभिराम ॥३९॥
 मृगनैनी आमोदनी, महामोद की रास ।
 गिरि बन पुलिन विलासिनी, मो मन करहु निवास ॥४०॥

कुंज कुंज केलि मिलि नवला नवेली कि भाँति,
 करुना कटाक्ष करि करनि में धारिहों ।
 रातिहू की बात सब प्रीतम के परिचय,
 कहिहों प्रगट प्रात नेकु न बिसारिहों ॥
 माधुरी सो मन की हिलग वाहि भाँति करि,
 प्रान हूँ ते प्यारी प्रिय सहचरि वारिहों ।
 अब तब जब कब लगिये रहत तक,
 कुंवरि कृपा कै कब ऐसी मोसों कारिहों ॥४१॥
 अहो मन मोहन जी कौन हेत हमहीं सों,
 कहा ऐसी निघट कटोर मन कीनो है ।
 तुम तो फिरत नित आना कानी दिये इत,
 मैं सों तन मन प्राण तुम ही कों दीनो है ॥
 मन बच क्रम कछु और न सुहात मोहि,
 मन तो तिहारी माधुरी के रस भीनो है ।
 चैन न परत नेक बैनन जनैये कहा,
 नैना मेरे निघट कठिन नेम लीनो है ॥४२॥
 जोपै तो तिहारो मन भयौ है कठिन अति,
 देखत हौं याही दुख दैहैं तो सिराइगो ।
 जाये तो तिहारे जिय ऐसी पै बसी है आय,
 तुम सों हमारो कहौ कहाँ धौं बसाइगो ॥

एक बार अपने को दूरिसो दिखाई दैके,
जाहु फिर चले कान्ह कहा घटि जायगो ।
तुमतो दया के दानी जाननि के मनि जानि,
चतुर सुजान देखि मन तो सिराइगो ॥४३॥

दो०-अनियारे कारे कहूँ कजरारे कल बाम ।

बाचक चाहनि चाह को, मोचक सदा सकाम ॥४४॥
मोहन मोहन सब कहैं, मोहन साँचो नाम ।
मोहन मोहन कै कछू, कियो मोहन सब गाम ॥४५॥
जा कारन छोड़ो सबै, लोक वेद कुल कानि ।
सो कबहूँ नहि भूलि कै, देति दिखाई आनि ॥४६॥
सदा चटपटी चित बसै, समुझि सकै नहि कोय ।
कोऊ खटपटी हिये में, कहत लटपटी होय ॥४७॥
एक बार तो आय कै, नैनन ही मिलि जाउ ।
सोंह तुमें जो सांवरे, नैकु दरश दिखराउ ॥४८॥
ऊरध खास समीर सों, सीतल हैं गई देह ।
तन मन डूबो जात है, इन नैनन के मेंह ॥४९॥
अहो प्राण पति प्राण यह, नैनन में रहि आय ।
पलक एक लों पाइहों, जो पहुँचौगे धाय ॥५०॥
रोकति हों करि जतन सों, छिन छिन यहै सिखाय ।
ए आवत हैं प्राणपति, मति निकसौ अकुलाय ॥५१॥

जान सुगम राखनि कठिन, यह प्राणन की टेक ।
सम्पुट के घनसार ज्यों, कीने जतन अनेक ॥५२॥
आस औषधी मेलि करि, नेह बास सों बांधि ।
मुख सासन बासन कियो, धरचो जतन सों सांधि ॥५३॥
पल में छिन में निमिष में, जो नहि आवहु नाथ ।
फिर पाछे पछताउगे, ज्यौ न परेगौ हाथ ॥५४॥
प्राण गये जो आयहो, तौ न सरेगौ काज ।
अहो प्राणपति प्रेम की, उलटि परैगी लाज ॥५५॥
प्राण गये की कछु नहीं, मति प्रीतम दुख होय ।
यही समझि मन में सदा, छीजत नैनन रोय ॥५६॥
प्राण गए प्रीतम मिले, कहा प्रेम में स्वाद ।
तन छूटे धन पाइये, मनहूँ कहाँ अहलाद ॥५७॥
मरे कहा हम होयंगे, को जानै इहि बात ।
तरपत ही बीतै सदा, नैनक को दिन रात ॥५८॥
जा रसना नामावली, करी सदा गुणगान ।
जिन कानन तब अमृत-मय, करी कथा रस पान ॥५९॥
जिन हाथन सो हेत सों, करी टहल बहु भाँति ।
जे लोचन मुख माधुरी, निरीख न कबहु अघाति ॥६०॥
जिन ऐसौ साधन कियो यह निष्फल क्यों जाय ।
सो सरीर क्यों सांवरे, दिजै सलिल बहाय ॥६१॥

चतुर सिरोमणि हौ बड़े, तुमही करौ विचार ।
 ताको यह गति बूझिये, कै कृमि कै बिट छार ॥३२॥
 परम सनेही होय जो, सो शरीर तजि जाँहि ।
 व्याध सदेही पाइये, यह विवेक तुम माँहि ॥६३॥
 भक्त अभक्त मिले सबै, कीने एक समान ।
 भक्त सदेह बुलाइये, तौ यह भजन प्रमान ॥६४॥
 एक बार इन लोचननि, देखौ नवल विहार ।
 इनहीं हाथन दुहन को, करौ बैठि शृंगार ॥६५॥
 इनहीं पाँवन प्रकट ही, बन बन डौलों संग ।
 सैनन में ही समझिहों, कछुक वातर सरंग ॥६६॥
 जो कबहुँ तुम कहोगे, बिना प्रेम विन भाउ ।
 या शरीर संजोग को, कैसो बने उपाउ ॥६७॥
 जब करुणामय देखिहौ, लोचन कमल विशाल ।
 सर्वाहि प्रेम सजोगता, उपाजि परै तेहि काल ॥६८॥
 कुविजा को सूधी करि, भ्रुव सदेह गयो लोक ।
 ए बातें सुनि सुनि सबै, मिटेउ हिये को शोक ॥६९॥
 पारवती के खंड में, सबै जुवति है जाहि ।
 हमको एति कठिन कहा, श्रीवृन्दावन माँहि ॥७०॥
 कीये को सब करत हैं, दीये को सब देत ।
 अनकीये को कीजिए, यह प्रेम को हेत ॥७१॥

नहि संजम सुमिरन कछु, नहि साधन नहि नेम ।
 नहि मन में समझौ कछु, कहा कहावत प्रेम ॥७२॥
 इन लोचन की लालसा, कबहुँ न मन ते जाय ।
 ज्यों प्यासे कों नीर विन, और न कछु सुहाय ॥७३॥
 नैन दुखी तब दरस विनु, देत छिनहि छिन रोय ।
 नैनन के दुख हरन कों, तुम विनु नाँहिन कोय ॥७४॥
 तुमसे हम कों एक हैं, हमसे तुमहि अनेक ।
 हो प्रीतम सो कीजिये, रहै प्रेम की टेक ॥७५॥
 जो मोसों मोसी करौ, नाँहि कछु मोहि ठौर ।
 तुम हो तैसी कीजिये, अहो रसिक सिरमौर ॥७६॥
 परम तुच्छ हों व्रणह ते, माँगत सकल सुमेर ।
 तन घट में चाहत कियो, सत सागर को घेर ॥७७॥
 करत मनोरथ अति कठिन, बिकल कहत मुख बैन ।
 जो मन को दुर्लभ सदा, चाहत देखौ नैन ॥७८॥
 सुगम करौ सब साँबरे, पै सुदृष्टि जो होय ।
 अनकरनी करनी करहु, करनी करहु न कोय ॥७९॥
 ज्यों सागर की लहर ते, काँपत हिये अनेक ।
 उन अग्रस्त-मुनि छिनक में, कियो आचमन एक ॥८०॥
 हाहा कर व्रण दन्त धरि, जाँजत हूँ कछु दीन ।
 कोटि जतन जो कीजिये, जल विन जिये न मीन ॥८१॥
 और करौ तब कीजियेहु, विविधि भाँति की केलि ।
 एक बार संग खेलिये, मिलि होरी के खेल ॥८२॥

जब होरी के खेल की, सुरत परत जिय आय ।
वही सुरत मन में बसै, सबहिं सुरत मिटि जाय ॥८३॥
जागत सोवत चलन चित, बैठत यही विचारि ।
हो हो होरी कबहुँ तो, उठित पुकारि पुकारि ॥८४॥
सदा संग मिलि खेलिये, सपनेहु में जाय ।
दुरि भाजहु जनु लाल के, मुख गुलाल लपटाय ॥८५॥
मूँदि रहौं इन लोचननि, अंचल ओट दुराय ।
तुम अंचल यह साँवरी, भरे अचानक आय ॥८६॥
जौ लो सोऊँ स्वप्न में, तौ लौं यह सुख होय ।
जागे कछु न देखिये, तरफि पुकारों रोय ॥८७॥
वा दुख कौ नहिं पारहु, कहौं कहाँ लो बैन ।
कै समुझै जाकै लगै, कै लागें जहँ नैन ॥८८॥
इन खेलन की लालसा, लगी रहै जिय माँहि ।
या मन के दुख हरन को, बिना कुँवरि कोउ नाँहि ॥८९॥
बार बार जाँचत यही, विह्वल बिकल विहाल ।
कब लिपटाऊँ लाल के, घोरि अरगजा भाल ॥९०॥
कब आँजहुगी करन सों, लोचन कमल विशाल ।
ता छिनु छवि ऐसी फवी, जनु कुरँग परि जाल ॥९१॥
कर मीडहिं लोचन कुँवरि, रहै न कछु संभारि ।
तौलों बेंसर के कलश, देंहुँ शी ते डारि ॥९२॥
मुख सोधों लपटाय कै, अरु बेदा दऊँ भाल ।
कब देखहु इहिं भाँति सों, लपटे बदन गुलाल ॥९३॥

कुँवरि सैन समुझाय है, कर मुरली हरि लेहु ।
नीकी भाँति बनाय कै, वैस जुवति को देहु ॥९४॥
तब अपने कर कुँवर को, वेश सखी को देउ ।
वा मुख की तब माधुरी, निरखि बलैया लेउ ॥९५॥
इत खेलन के खेल को, कलमलात दिन रैन ।
तरफि तरफि छिनु छिनु परों, निमिष न आवत चैन ॥९६॥
हो हो कहत पुकारिहों, अहौ श्याम सुनि लेउ ।
होरी संग न खेलि हों, तो होरी है देउ ॥९७॥
खेल कहाँ लो बरनिये, जो उपजै जिय माँहि ।
उठै मनोरथ हिये में, फिर फिर हिये समाँहि ॥९८॥
वा होरी के खेल को, खेल कहूँ हूँ जाँउ ।
कै सोधों हूँ दुहन के, अङ्ग अङ्ग लपटाँउ ॥९९॥
कै गुलाल हूँ लाल के, परों लोचननि जाय ।
कै पिचकारी प्रिया की, हूजे कौन उपाय ॥१००॥
कै केशर के रंग में, कोजे जाय प्रवेश ।
तब क्योंहु कछु पाइये, वा सुख को लव लेश ॥१०१॥
कै फुलवारी फूलिये, तिन फूलन में जाय ।
जिन फूलन के भाँवते, भूषन करें बनाय ॥१०२॥
कै सोवें जा सेज पै, सेज सोइ हूँ जाँउ ।
कै क्यों हूँ हूँ मधुकरी, सुख सुगन्धि लपटाँउ ॥१०३॥
पिय प्यारी जहँ पग धरै, होहु तहाँ की धूरि ।
जो समझे नहिं प्राणपति, रहों ठौर सब पूरि ॥१०४॥

कै उर में है माधुरी, माल कंठ लपटाँउ ।
 कै अजन है दोहुनि के, नैनन मांक समाँउ ॥१०५॥
 कठिन मनोरथ मन उठे, को पूरनि करे आनि ।
 कृपा करेंगी लाडिली, दीन दुखी मोहिं जानि ॥१०६॥
 सुधि आवे वा समय की, बुधि और है जाय ।
 विह्वल विकल पुकारि कै, परौ धरनि मुरझाय ॥१०७॥
 अब तो यात न को तनक, और न कछु सुहाय ।
 जब ते उत्कंठा लता, उठी हिये में आय ॥१०८॥
 तब हम तो कछु भले हे, हुतो भजन से हेत ।
 अब गति औरे होत है, नेक नाम मुख लेत ॥१०९॥
 श्याम नाम जो श्रवण में, परै कहूँ ते आय ।
 तो लोइन वा रूप को, अधिक उठे अकुलाय ॥११०॥
 संयम सुमिरनस ब मिटे, उलटी सबै सुहाय ।
 एक लालसा मिलन की, रही अकेली आय ॥१११॥
 और कहाँ ते सुमरिये, लीला रास विलास ।
 रा अक्षर के कहत ही, होत कम्प अरु स्वास ॥११२॥
 नैन सजल बानी सिथिल, उठे रोंम अकुलाय ।
 आपुन ही को आपुनों, तन बैरी है जाय ॥११३॥
 कब आवोगे धाय कै, अति विह्वल मोहिं जान ।
 दूरि पाछे लोचन दोउ, कर मूँदहुगे आन ॥११४॥
 तब अपने हों हिये में, करौ अनेक विचारि ।
 कै सुपनो पायो सरस, देखों दृगन उधारि ॥११५॥

कै देखत हों ध्यान में, दोऊ मुख सुकुमारि ।
 कै मन में संभ्राम कछु, उठत बारहिं बारि ॥११६॥
 कै काहू की कृपा ते, कबहुँ साँच है जाय ।
 तो लों भुज भरि भापते, लैहों बेगि उठाय ॥११७॥
 तब आंचर सौं प्राणपति, कर पोंछोगे नैन ।
 मधुर मधुर हँसि कहेंगे, प्रेम लपेटे बैन ॥११८॥
 अहा माधुरी हम बिना, जो बीतो दुख तोय ।
 सो दुख तेरे हिये में, छिन छिन साले मोय ॥११९॥
 बीती सो बीती सबै, अब जिन करहु सन्देह ।
 अब निवहैगी दुहुन सों, सदा एक रस नेह ॥१२०॥
 अब कबहुँ जिन भूलि कै, मन मति करहु कुरंग ।
 पलक न अन्तर होहुँ गों, सदा खेलि हमसंग ॥१२१॥
 हों अपने कर कुँवरि को, करौ आजु शृङ्गार ।
 तु रुचि-रुचि कर देहि मो वन फूलन के हार ॥१२२॥
 विविध भाँति के फूल तब, लै जाऊँ उठि धाय ।
 भूषन परम अनुप अति, देऊँ बनाय बनाय ॥१२३॥
 सीस फूल सोभा मनो, कोटिक जरे जराय ।
 वरन वरन बेनी मनो, रही त्रिवेनी आय ॥१२४॥
 सुवन दारमी सुमन को, रचि बेदा देऊँ भाल ।
 रचों अनूपम हिये को, हेम जुहो की माल ॥१२५॥
 पदकि रचों उर फूल की, छवि देखत रहौं भूल ।
 फूलन सों ऐसी बनी, मनहुँ बनौं मखतूल ॥१२६॥

फूलन के अंगद रचौ, पहाँची फूल गुलाल ।
 नूपुर कंकन भिभिनी, बाजहिं परम रसाल ॥१२७॥
 रीझ कछू मुसकायेंगे, करि सुदृष्टि इहि ओर ।
 माल मरगजी कंठ के, दै हैं मोहि अकोर ॥१२८॥
 नख सिख करहुं सिंगार जब, दरस दिखाऊँ आनि ।
 कब देखों वा मुकुर में, मिलि मुख की मुसकानि ॥१२९॥
 षट्स नाना भाँति के, धरौं निकट सब आनि ।
 मधुर सलोने चरपरे, कछू मन की रुचि जानि ॥१३०॥
 अरस परस भोजन करहु, सो सुख कह्यौ न जाय ।
 नैनन ही में सखि न कों, देत बुलाय बुलाय ॥१३१॥
 विविध भाँति बीरी रुचिर, दैहों तुम्हें बनाय ।
 तब देखों जब कुँवरि कों, अपने हाथ खवाय ॥१३२॥
 सेज सँवारों सुखद अति, जहाँ करौ विश्राम ।
 धरौं सौंज सब समय की, नवहि कुँज सुखधाम ॥१३३॥
 तुम पौढोगे प्रिया प्रिय, नव प्रजंक परि जाय ।
 ललित भाँति नव लगिन सौं, लगौं पलोटनि पाय ॥१३४॥
 अरसि परसि मिलि करहुगे, कछुक हास परिहास ।
 समझि समझि मुसकाउगे, दोउ भेद के गाँस ॥१३५॥
 तब कछू लोचन लोल अति, कछू सलज्ज कछू वाम ।
 कछू कजरारे ढरि रहे, पिय के सदा सकाम ॥१३६॥
 कछुक उगमगे रगमगे, देत सगवगे सैन ।
 चपल खरे रस अनुसरे, भरे मनोरथ सैन ॥१३७॥

कब देखों यह भाँति सों, जुडे नैन सों नैन ।
 अरस परस मुसकाति मन, सभक गूढ कछु सैन ॥१३८॥
 कब इन कानन परहिंगे, प्राणन कों सुख दैन ।
 कछु ललचौहे लाल के, लोभ लपेटे बैन ॥१३९॥
 जब प्रीतिम रस रङ्ग में, रहे परस्पर छाय ।
 तब ललिता मोहि सैन दै, लैहैं निकट बुलाय ॥१४०॥
 अरस परस सुज कंठ में, निरखहिंगे छवि नैन ।
 सब सुख मोहि बतायिहै, करकै सैन बैन ॥१४१॥
 नव निकुञ्ज के रंध्र में, छिन छिन नवल विहार ।
 निरखि माधुरी नैन भरि, भरहिं नैन मत बार ॥१४२॥
 सखी विशाखा कहेंगी, कबहु बिचस मत होहि ।
 यहाँ प्रेम बाधक सदा, कहि समुझायो तोहि ॥१४३॥
 कै सनमुख सुख देखिये, करत हास परिहास ।
 कै सेवा सब समय की, कीजै निकट निवास ॥१४४॥
 रूपमंजरी आनि के, कर पौछेगी नैन ।
 कछु कानन में कहेंगी, परम मधुर अति बैन ॥१४५॥
 सखी सहेली सबै मिलि, प्रीति करेंगी आनि ।
 सैनन में सुख देंगो, नई सहचरी जानि ॥१४६॥
 जब जगेंगे जुगल वर, लैहैं निकट बुलाय ।
 अहो माधुर मोद सों, कछुक मधुर सुर गाय ॥१४७॥
 भेद रागिनी राग के, उपजतिंगे बहु भाँति ।
 तान गान सुन प्राणपति, रीझि रीझि मुसकाति ॥१४८॥

दसन खंडित बीरी रुचिर, दें हैं निकट बुलाय ।
 कुँवरि आपने कंठ को, हार कंठ पहराय ॥१४६॥
 तब सैनन में कहेंगे, कछु विनोद रस गाय ।
 मन भाये पहौंचे निकट, दिन होरी के आय ॥१५०॥
 भाँति भाँति परिहास रस, कहिहों कछुक बनाय ।
 किलकि किलकि हँसि जाँयगे, दोउ कंठ लपटाय ॥१५१॥
 तब होरी की सौंज सब, राखों सकल सँवारि ।
 घोरि अरगजा घटनि में, केसर सरस सुधारि ॥१५२॥
 रचि गुलाल बहु भाँति के, सोधों सरस बनाय ।
 चन्दन चारु कपूर सों, भाजन विविधि भराय ॥१५३॥
 करि अवीर बहु रंग को, नव गुलाल को नीर ।
 चलि खेलहु पिय प्राणपति, कालिंदी के तीर ॥१५४॥
 हुलसि उठे हिय लाडिले, दिन होरी के जान ।
 अपने अपने मेल को, सबै मतौ मन ठान ॥१५५॥
 वृन्दादिक सब सामरी, भई श्याम की ओर ।
 ललित विशाखा माधुरी, बनी कुँवरि की जोरि ॥१५६॥
 एक ओर नव नागरी, लिये सहेली संग ।
 ठफ दुँदभि और भालरी, बाजत भेरि मृदङ्ग ॥१५७॥
 उतहिं कुवरि संग किन्नरी, रुरत मुरत नीसान ।
 हो हो होरी विन कछू, और परहिं नहिं कान ॥१५८॥
 फँटन भरे गुलाल की, सोधो सरस मिलाय ।
 दुरि भाजत हैं प्राणपति, प्रिया बदन लपटाय ॥१५९॥

घोरि अरगजा घटनि में, राखे सबनि दुराय ।
 दुरि पाछे हूँ श्याम के, दर्ई शीश ते नाय ॥१६०॥
 एक सखी तब बीच करि, ढिंग ठाड़ी भई आन ।
 पिचकारी रस पूरि कै, दर्ई नैन में तान ॥
 भरि भरि भोरि अवीर के, दीने सबनि उड़ाय ।
 अँधियारो करि श्याम को, लैगई कहूँ दुराय ॥
 बहुत दिनन में सबन के, भये मनोरथ आज ।
 नीकी भाँति बनाय के, करौ जुवति को साज ॥
 नख सिख अंग सिंगार करि, चली प्रिया पै धाय ।
 आज नई इक सहचरी, चाहति देखौ पाय ॥
 सब सखियन कर गह लिए, ढिंग बैठारी आय ।
 तन पुलकित भो प्रेम सों, परस प्रिया के पाय ॥
 पहचानी हम सखी यह, परसत ही कर आय ।
 जो भाजी दुरि सबनि के, मुख सोंधों लपटाय ॥
 बहुरो वाही रूप सों, मिलि भुलि आँगी डोल ।
 सब सहेली सहचरी, गावहिं राग हिंडोल ॥
 एक अरगजा घोरि कै, छिरकत हैं तेहि गात ।
 इक गुलाल लपटाय मुख, देखत ही दुरि जात ॥
 इक पिचकारी कनक की, नव केशर सों घोरि ।
 पिय प्यारी कों निरखि कै, चितै हँसति मुख मोरि ॥
 इहि विधि हिल मिलि खेलिए, फागु बड़ी त्यौहार ।
 बहुरयो मधु ऋतु जानि के, विहरहिं विपिन बिहार ॥१७०॥

तब वृन्दा द्रुम बेलिको, दीनों परम निदेश ।
 नख सिख करहु सिंगार सब, पहिरहु नूतन वेश ॥१७१॥
 हेम जुही हरषहु हिये, हरि आवत तब हेतु ।
 प्रिय लागति हौ पीय कों, प्रिया बदन सुख देत ॥
 हो तमाल मालावली, करहु मोद विस्तार ।
 सुख पावत हैं स्वामिनो, देखि श्याम उनहार ॥
 हो मल्ली हो मालती, हो चम्पक हो चारु ।
 नख सिख तें आनन्द सों, फूलहु सब फुलवार ॥
 यही मनोरथ मन कियो, सबै सुमन निरवार ।
 आजु कुँवरि मिलि करहिगे, अपने करन सिंगार ॥
 फूल रही कुसुमावली, छवि बरनी नहि जात ।
 सबहि सरस सुख देति है, अपनी अपनी भाँति ॥
 अरवि परवि भुज अंस धरि, निरखत सुख चहुँ ओर ॥
 चितवत ही आगें चलें, नाचत मोर चकोर ॥
 जहाँ कुँद देखति कुँवरि, निरखति तहाँ निहारि ।
 ताही तें भावत अधिक, प्रिया दशन अनुसारि ॥
 नील कमल निरखे कहूँ, तन पुलकित तेहि काल ।
 अपने कर सों कुँवरि लै, करी कंठ की माल ॥
 पोत कमल लालन कहूँ, लख्यों ललित कर धाय ।
 बार बार चूमत तिनहि, प्रियहि दिखाय दिखाय ॥
 मंद मंद गति चलति हैं, फेरि रही तन काँति ।
 नवल माधुरी कुसुम के, दलन विछावत जात ॥१८१॥

नवल माधुरी पंथ की, रचना रची बनाय ।
 नवल माधुरी कुँज में, मिले कुँवरि दोउ आय ॥१८२॥
 नवल माधुरी करनि सों, नवल करत शृङ्गार ।
 नवल माधुरी फूल सों, देत सँवारि सँवारि ॥
 नवल माधुरी दलन सों, बाँधे कवरी केस ।
 नवल माधुरी बीन के, बेनी रची सुदेस ॥
 नवल माधुरी कुसुम के, करन करे अवतंस ।
 नवल माधुरी माल के, लटपत फोंदा अंस ॥
 नवल माधुरी सेज पर, नेक करौ विश्राम ।
 नवल माधुरी प्रेम सों, पवन करत अभिराम ॥
 नैनन सों नैना मिले, मुख सों मुख लपटाय ।
 भुज अरुभे सुरभे नहीं, रहे सुरति सुरभाय ॥
 उरसों उर ऐसे मिले, सब अङ्गन सों अङ्ग ।
 मनहुँ अरगजा में कियौ, नव केशर को रङ्ग ॥
 अरस परस बतराय मिलि, कल्लुक अटपटी बात ।
 नैन वैन तन मन सुनत, सबै श्रवन हूँ जात ॥
 जब निरखत मुख माधुरी, लोचन रहत लुभाय ।
 श्रवन पान तन मन सबै, नैननि में रहि आय ॥
 जब बोलत तब वचन कों, श्रवन अतिहि ललचात ।
 जब चाहत चख चाह को, वैन खरे अकुलात ॥
 जब सैनन मुसकात दुहु, चितै माधुरी ओर ।
 देखत सब सुख पूरि कै, कृपा कटाक्षन कोर ॥१८३॥

ता छिन की शोभा कछू, कहत बनै नहिं बैन ।
 कै सुख समुझै माधुरी, कै माधुरि के नैन ॥१६३॥
 समय जानि कै सहचरी, रही निकट सब आय ।
 अपनी अपनी सोंज सब, लीनी करन बनाय ॥
 सीतल सुखद सुवास इक, करवावति जल पान ।
 एक सखी तब दुहुन को, दग्गस दिखायो आन ॥
 एक कुसुम बहु भाँति के, लाई सरस सँवारि ।
 एक माधुरी दुहुन की, नैनन रही निहारि ॥
 एकनि चित्र विचित्र अति, रचे अनूपम भाँति ।
 चितै चितै नागरि कुँवरि, नैननि में मुसकाति ॥
 एक बजावत किन्नरी, इक नाचत संगीत ।
 इक गावत अनुराग सों दुलरावत दोउ मीत ॥
 एक निकर सारस बनें, एक गौर इक श्याम ।
 सदा एक रस रसन सों, रटत पिया पिय नाम ॥
 इक भोजन बहु भाँति के, लाई रुचिर बनाय ।
 देत माधुरी दुहुन को, नव नव रुचि उपजाय ॥
 जुरि मंडल बैठी निकट, सबै सहेली सङ्ग ।
 बीच बीच परिहास के, उपजत कोटि तरङ्ग ॥
 पान करत रस माधुरी, पियत न कोउ अघात ।
 ता पाछे अचवन कियौ, जल सुगन्धि बहु भाँति ॥
 रचि वीरी करि कुँवरि के, देत सँवारि सँवारि ।
 कर काँपत है कुँवरि के, मुख माधुरी निहारि ॥२०३॥

तब उनको मन जानकै, हों अपने कर देत ।
 वे सहचरि सुख समझि कै, अरसि परसि सुख लेत ॥२०४॥
 इहि विधि विलसि बसन्त ऋतु, सकल सुखन की रास ।
 नवल माधुरी कुंज में, कीने विविध विलास ॥
 लाग्यौ पवन सुहावनौ, श्रमकन उठे सुदेश ।
 गिरिवन पुलिन निहुंज गृह, ग्रीष्म कियौ प्रवेश ॥२०६॥



❀ अथ श्रीबंशीवट माधुरी ❀

दो—चारु चरण चैतन्यचन्द्र मन बच कर ध्याऊँ ।
 सदा सनातन रूप बास वृन्दावन पाऊँ ॥१॥
 दिन प्रति रास विलास केलि नैनन भर देखों ।
 करत हास परिहास कुँवर अंतर गति लेखों ॥२॥
 बंशीवट तट निकट भूमि शोभित हरियारी ।
 निशिवासर इक संग सदा विहरहिं पिय-प्यारी ॥३॥
 कालिंदी के कूल कमल फूले बहु भाँतिनि ।
 अरुण पीत सित असित कोउ शोभित सत पाँतिनि ॥४॥
 विमल कल्पतरु छाँह निकट शोभा अधिकाई ।
 रचि पचि मन रमि रख्यौ नेक कहूँ अनत न जाई ॥५॥
 मधु ऋतु आगम जानि विपिन मिलि विहरत दोऊ ।
 एक वैस गुण रूप एक सम घटित न कोऊ ॥६॥
 ललितादिक सब सखी सहेली परम सुहाई ।
 नवल माधुरी संग सदा सहचरि सुखदाई ॥७॥

अति आरत सों अरस परस अंसन भुज दीयें ।
 डगमगात डग भरत रूप माधुपि रस पीयें ॥८॥
 जित देखौं तित छवि प्रकाश सों छाये रह्यौ वन ।
 जनु अवनी पर चरण धरत डोलत दामिनि वन ॥९॥
 फूलि रहीं नव लता देखि लागत मन लोभा ।
 थकित रहे हैं नैन देखि वृन्दावन शोभा ॥१०॥
 वन शोभा बहु भाँति सकल तन में प्रतिविम्बित ।
 वन में तन हूँ रह्यौ सुतन वन को अवलम्बित ॥११॥

कवित्त—पल्लव प्रसून पत्र सरस सलोल लता, नखसिख
 शोभा मय अंगन में झलकै । दिनकर हू ते द्युति दिपति
 अधिक देखि, दम्पति को देह सत द्रुमनि में दलकै ।
 माधुरी की धारा रोमरोम ते उमंगि चली अरस परस
 छवि दुहुँन की छलकै प्यारी जी की काँति न समाति कहूँ
 कानन में, मानों दीप मालिका-सी दोलें टिंग जल कै ॥१२॥
 दो०—वन शोभा जो देखिये, सब तन कियो प्रकाश ।

तन शोभा जो देखिये, वन को सकल निवास ॥१३॥
 चौ०—वनमें तनतनमें वृन्दावन । ज्यों वन दामिनि दामिनि में वन ॥
 अहो प्रिये या वन की बात । कहत कछु मुख कही न जात ॥
 कबहुँक दोऊ विपुल हूँ जाँय । विपुल दीठहूँ नैन समाँय ॥
 वन की शोभा कहत न आवै । कोट भाँति निज-रूप दिखावै ॥
 छिनछिननौतनविपिनविलास । अरुण गीतसित असित प्रकाश ॥
 फूले नवल निकुंज निहार । कोटि भाँति के किये शृङ्गार ॥

रो०—अरुण रंग की लता ललित फूली बहु भाँतिन ।
 अरुण फूल फल अरुण अरुण पल्लव नव पाँतिन ॥२०॥
 सरस-भूमि अति अरुण अरुण सारस सुठि सोभित ।
 अरुण दलन की सेज देखि मनको मन लोभित ॥२१॥
 उमड्यौ विपुल अनुराग जनु उपमा को नाहिन अरुण ।
 प्रात समय प्राची-दिशासों जनु गिरिसौ निकस्यो तरुण ॥
 कवित्त—पीत फूल पीत फल पीत ही परम दल, पीत बुझ प्यारी
 मोहि प्राण हु ते प्यारी है । परम रुचिर पीत पल्लव प्रकट भये,
 पंकज पराग पूरि धरणी सुधारी है । पीत ही पंकज पीत
 पुहुप सुवास रच्यौ, परम प्रवीन कैलि माधुरी सिंगारी है ।
 पीत रंग पंछी प्रघटित पीत भाषा मुख, हिलि मिल गावें
 गुण कीरति तिहारी है ॥२३॥

कवित्त—फूलन के भार फूल रहीं सब डार अब, देखिये
 निहारि छवि लता हरियारी की । हरे हरे पात सब रससों
 चुचात देखि, दग न अघात दुति हरी फुलवारी की । तैसेई
 हरित शुक सारस सरस अति, गावत सुजस कैलि कीरति
 तिहारी की । हरित निकुंज रस माधुरी को पुञ्ज अति,
 ताहिते परम ऐसी प्रीति है सुप्यारी की ॥२४॥

कवित्त—अलिन के पुंज जाते चलि न सकत नेक, नील
 कुञ्ज नलिन की नीके कै निहारिये । कोकिला के कूल कल
 कूजित ललित गति, जाकी उपमा को कोटि घटा घन
 चारिये । नीलमणि भूमि नील दलन की सजा रचि, नैन भरि

देखो नैक आगे पाँव धारिये । नील कुसुमन के कटाव कौन
भाँति रचे, याकी नैक मन देके माधुरी विचारिये ॥२५॥

कवित्त-कुञ्ज कुञ्ज केवरा कमोद कुंद जाही जुही, उज्ज्वल
निकुञ्ज आज सरस सवारी है । बकुल चमेली मल्लि माधुरी
मृदुल शुचि, सेवत सुगन्ध सुठि सरस निवारी है । फूलन
की रचना रुचिर कौन भाँति रची, कर अभिसार जनु
नायिका सिंगारी है । जग मगि रही तैसी जौन्ह उजियारी
जैसी, गोरे तन सोहैं मानों तनु सुख सारी है ॥२६॥

दो०-शीमा नवल निकुंज की, कहत बनै नहि बैन ।

कै जाने मन की दशा, कै माधुरि के नैन ॥२७॥

चौ०-एक कुंज केसरि रँग रंगी । एक श्याम सोसनी सुरंगी ॥

एक बैगनी इक जंगाली । एक रंग नवरंग गुलाली ॥२८॥

एक कर्बुरित एक कषायक । कनक वरण सब के सुख दायक ॥

एक लता शोभित सरसानी । एक तमाल कंठ लपटानी ॥२९॥

तरुवर रहैं भूमि अवनिसों । फूले फले भाँति कवनीसों ॥३०॥

दो०-कुसुम कुसुम पर मोद हित, मधुपन किये निवास ।

तव दरशन हित बन रचे, कोटिक नैन प्रकाश ॥३१॥

निकसी सरस सलोल अति, लता लहलही डार ।

मिलवे को धावत मनौ, आवत भुजा पसार ॥३२॥

तरुवर मधुधारा श्रवे, चहुँ दिशि चंचल पात ।

सदा प्रेम भोने रहैं, कम्पित पुलकित गात ॥३३॥

कूजत सारस सरस अति, हँ हँ जात विदेह ।

प्रगटित तव नामावली, भोजे सरस सनेह ॥३४॥

मोर मुदित नाचत महा, करत कोकिला गान ।

अपने अपने गुन सबै, तुम्हें निवेदति आन ॥३५॥

कवित्त-निस दिन एक रस रहत मुदित अति, बड़े गृह
पति देखी द्रुम वृन्दावन के । साधुन के सेवे सदा सौरभ
सुमन लिए आवत मधुप ले ले लोभी मधुकन के । फूली
है अधिक सुख देखि अहो लता बधू, रहति है संग लप-
टाये पियतन के । कौन प्रेम कौन रस अरस परस मिलि,
कहत है अपने मनोरथ तो मन के ॥३६॥

दो०-देखहु प्रिया निहार कै, कालिन्दी की ओर ।

फूल रही कमलावली, मनहु भयो अब मोर ॥३७॥

हंसपुता हरपित भई, निरखति रूप तिहार ।

अरविंदन की आरती, देत बदन पर वार ॥३८॥

आज मनोरथ कीजिये, मन के मदन हुलास ।

संग सब मिलि मिलि सहचरी, विहरहि वारि विलास ॥

चौ०-धाय धाय सब जल में आई । अपने अपने जूथ बनाई ॥

अरस परम छिरकत हैं दाऊ । एक वैस गुण घटित न कोऊ ॥

सन्मुख सुर सबै मिलि खेलत । जलधारा कर सों भरि पेलत ॥

भरि अंजुलि नैनन में ढारत । कबहुक नैन कमल भरि मारत ॥

नख सिख भीज रहे सब गात । उमड़े आनंद उर न समात ॥

भीजे बसन अंग लिपटाने । अति सूक्ष्म तन जात न जाने ॥
 मनमोहन कीनी कछु घात । छिरक छींट जल में दुरि जात ॥
 हेरि हेरि जल में दुरि आई । गहत प्रिया के उर लपटाई ॥
 अरस परम रस सों भकभोरत । हार चीर कंचुकि बंद तोरत ॥
 तब ललिता कछु जतन बनायो । सब सखियन को भेद बतायो ॥
 हूबक लै उछरी कहूँ जाई । गहे धाय मनमोहन आई ॥
 मध्य कुँवरि राखे कर ठाढ़े । चहुँ ओर छिरकत जल गाढ़े ॥
 मनमोहन इकले कर पाई । करति सबै अपने मन भाई ॥
 एकनि कर गाढ़े करि गहे । एकनि वचन भामते कहे ॥५५॥
 एकनि आन भरी अंकवारी । इक कानन भाजत दै गारी ॥
 एक अंचर पोंछत मुख आई । एक कपोल चूमि दुरि जाई ॥
 अशनौ बल कीनौ बलवीर । निकस्यो गज मनु तोरि जंजीर ॥
 वारन मनहूँ वारुणी पीयै । विहरत वर तरुणी संग लिये ॥
 जल में छल नाना विधि खेलत । कबहुँ क धाय कंठभुज मेलत ॥
 नवनवखेलनवलमिलि खेलत । छिनछिनरससागरसुखभेलत ॥
 प्रिय तन दीठ कुटिल सब चाहत । नैन सैन दोऊ ओर उमाहत ॥
 जल तरंग डोलत अवगाहत । लोक वेद मरजादा ढाहत ॥
 दो०— जल विहार के जतन जे, जानति कुँवरि अनेक ।

टारे टरत न नैन कहूँ, अपनी अपनी टेक ॥६४॥

चौ०—रूपेश्वर सम्मुखदोऊ ओर । इतिहि कुँवरि उत नवलकिशोर ॥
 जुरी जुवति अपने सब जोर । भर लीनी कमलन की झार ॥

एक लिये कर कमल दुलावति । इक ठाड़ी सैनन डरपावति ॥
 एक अचानक घात चलावति । एक बीच करि अनी बचावति ॥
 बढचो खेल कमलन को भारी । सैनन में सिखवत सुकुमारी ॥
 धावति जुवति देय किलकारी । तब जल में दुरि जात विहारी ॥
 कमल समूह लिए फिर आवत । हरे हरे काहू न जनावति ॥
 लालन दीठन वाण चलावति । ललना अंचल ओट बचावति ॥
 जल में कमल जहाँलों पाये । ते नव लाल सु तोर मँगार ॥
 मोहन मिलि कर निकट बुलाई । भरि भरि झोर शीशते नाई ॥
 इक नाचत दै दै कर तारी । एक हँसति ऊँची किलकारी ॥
 आई निकट देखि सुकुंवागी । दीठ ओट हँ गये विहारी ॥
 तब लालन कमलन बहु लाए । प्यारी के सम्मुख उठि धाये ॥
 देखी कुँवरि निकट जय आये । ललिता कर ते आन छुड़ाये ॥
 अरवराय जल में फिर हेरत । इत उत चहुँ ओर कर फेरत ॥
 खोजत कमल कहूँ नहि पावत । दीख परै पर हाथ न आवत ॥
 दो०—भलमलात जल में विमल, मुख कमलन की काँति ।

उमगि उमगि चाहत मिलो, कर परस्यो नहि जात ॥८१॥

चौ०—नैन कमल कमलन सो खेलत । कर कमलन सों हरि भरि खेलत ॥

उरज कमल सों उर लपटानो । बदन कमल में बदन समानो ॥

दो०—मदन खेल के खेल में, तनमय भै सुकुमार ।

भलकत भलमल बदन पर, जनु वारिज परिवार ॥८४॥

चौ०-अतिरस भीजरहेपिय प्यारी। सिथिल भई तन अति सुकुमारी॥
 जल में एक महल तब देख्यो। शोभा सरस सुमेर विशेष्यो ॥
 अद्भुत रूप अनूप निहारो। कलिंदी निज करन संभारो ॥८७॥
 आवें संग सहचरी लिये। प्यारी के अंसनि भुज दिये ॥८८॥
 महल पौरि में कियो प्रवेश। रीझ रहे छबि देख सुदेश ॥८९॥
 जल में थल थल में जल जाने। समझि भेद मनमें मुसकाने ॥९०॥
 बन्दन माल द्वार पै सोहै। देखत ही सब को मन मोहै ॥९१॥
 मंगल कलश पूरि तहाँ धरे। कदलि खंभ ठाड़े तहाँ करे ॥९२॥
 मधुकर मंगल गीत उचार। सारस सुजस रहत हैं द्वारें ॥
 चहुँदिश फूल रही फूलवारी। चंपक बकुल गुलाब निवारी ॥
 कमल दलन सों धराणि शृंगारी। डरपन चरण धरत पिय प्यारी॥
 केसर के सरवर कहुँ भरे। जल सुगंधि सों पूरन करे ॥९६॥
 कहुँ कहुँ कंचन के नल उछरे। मंद मंद झरना कहुँ झरे ॥९७॥
 एक महल दरपन को मोहै। उपमाको कोटिक रवि कोहै ॥
 एक ठौर फूलन के न्यारे। मणिमय मंजुल खंभ सँभारे ॥९८॥
 कहुँ बिछौना सरस बिछाये। खेलन को सब खेल बनाये ॥
 चौपर और शतरंज अनूप। और विविध भाँतन के जूप ॥
 एक महल कीने चित्र सारी। ब्रज की लीला सब विस्तारी ॥
 एक महल सौरभ के रचे। सोधों सरस सुगंधनि सचे ॥
 एक महल फूलन के फूलें। मत्ता भये मधुकर रस भूलें ॥
 कहुँ सहेली वसन सँवारें। कहुँ कपूर चन्दन मिलि गारें ॥
 कहुँ माल फूलन की रचें। कहुँ मणिमय कंचन की खचें ॥
 दो०-अहो प्रिये या महल की, शोभा कही न जात।

कौन कौन रचना रची, देखत दृग न अघात ॥१०७॥

चौ०-तब शृंगार महल में आये। भूषन बहुत भाँति पहराये ॥
 अपनी अपनी रुचि जो भाये। तहाँ बैठ शृंगार बनाये ॥

कवित्त-अरस परस दोऊ करत शृंगार मिलि, लालजू
 के लाल पाग ललित बनाई हैं। प्यारी जूकी सारी सुकुं-
 वारी तन सुख सोहै, कँचुकी अरुण उर कैसी छवि छाई
 है। लोचन चपल अति कानन करन फूल, फूले तन
 फूलन की माला बनि आई है। जग मगि रहे अंग भूषन
 अनूप अति, भूषन को भूषन तो रूप की निकाई है ॥११०॥

कवित्त-करत शृङ्गार कछु कौतुक उठत अति, मन समु-
 भत सुख कहत न आवहीं। फिर फिर पोंछत दृग् अंजन
 अधिक दे दे, वेसर उतारि बार बार पहरावही। करत
 कपोलन में चित्र नाना भाँतिन के, मृगमद लेख लिखि
 लिखि के मिटावहो। मोहन के मन में मनोरथ उठत जो
 जो, समुझि समुझि प्यारी मन मुसकावही ॥१११॥

कवित्त-सहज सुदेश अति सुन्दर सुठौने अंग, बार बार
 तिनको शृंगार कहा कीजिये। आनन में लोचन चपल
 अनियारे कारे, तिनहुँते कानन कमल कहा दीजिये। मुस-
 कानि मोतिन की माला उर शोभा देत, अंगन को कहा
 अंगराग हाथ लोजिये। सोहैं कै कहत सुख याते न सरस
 कोऊ, सनमुख बैठि मुख देखि देखि जीजिये ॥११२॥

स०--बैठे हैं फूल भरे रस फूल सों, फूल निकुञ्ज में कुञ्ज विहारी।
 फूल के रंग भरे अंग में मग, फूल अंगनि फूल रही फूलवारी ॥

फूल के भूषन फूल रहे तन, फूल मई वृषभानुदुलारी ।
 फूल को भार सँवारि सकै नहीं, फूलहुते अति ही सुकुमारी ॥
 दो०-करि बैठे सिंगार नव, सन्मुख सबहि संवारि ।

कालिदां तिहि समय के, लाई सब उपहार ॥११४॥

षट रस नाना भाँति के, दोने सरस सँभारि ।

परसत अपने हाथ सों, मणिमय मंजुल थार ॥११५॥

सो०-मधुर सलोनी भाँति, निपट सँवारे चरपरे ।

कटुक न जाने जात, फीके उनी के किये ॥११६॥

कवित्त-मंजुल सहित आन मंडल में बैठे आन, मणिन
 के थारन को मंडल बनायो है । सखिन समाज सनमुख
 सब शोभा देखि, मानो कमलिनी को विपिन सों लगायो
 है । नये नये भोजन करत नाना भाँतिन के, नई रुचि
 जाकी कछु जैसो मन भायो है । बोलि बोलि देति दोऊ अपनी
 सहेलिन को, ऐसी माधुरी सों कोऊ क्यों हूँ न अवायो है ॥

कवित्त-भोजन की भाँतिन को कांति न कही परति,
 पाँति पाँति राखे पनवारे तो परिस कै । मंजुल मधुर मृदु
 मादिक सलोने लौने, स्वादिक अधिक रस रहे हैं सरस
 कै । अरस परस मिलि जैवत रसिक वर, सब रस रह्यो
 वृन्दाविपिन वरसिकै । कोर के उठावत पै करन करत कद्यौ,
 विवस हूँ जाति मुख माधुरी दरसि कै ॥११८॥

कवित्त-भोजन करत नाना भेद उपजात कछु, छिन छिन

नई नई घातन मिलावहीं । जवहीं सँभारि मुख देत हैं मधुर
 कौर, कर तेहि ठौर ते न नैकहू उठावहीं । कवहुँ कछुक
 दूरि अदल बदल लेत, दम्पति सुजी की बात काहू न
 जानवहीं । लालची लड़ेतीजू पै लेत न अघात क्यों हूँ,
 लोचन में लाल बार बार ललचावहीं ॥११९॥

स०-भोजन जोजन के करिये बलि, जो जन लाज सुवास
 बसै हों । मैनेके मोदक मादक हैं अति, स्वादिक अधिक
 केलि रसैहों । सजनीजु खवावति भेदनिसों कछु हास
 विलास हिये में हसै हों । मोहन के मुख लों करिकें डहकाय
 प्रिया मुख देत गसै हों ॥१२०॥

स०-प्राननते अपने प्रिय को पिय, भोजन अपने हाथ करावैं ।
 रंचक सों कर कौर लिए पर, पंच महा मन में उपजावैं ।
 धरैं कर डार डरे मन में जू, प्रिया अपने जिय न जनावैं ।
 नैकसु जो हँसि देत हँसीली, कहूँ फिर हाथ नहीं मन आवे ॥
 कछु मादिक स्वादिक चोजन के, व भोजन भामिन भाइन में ।
 कछु भेद सों माधुरी पान करें, कछु खात खवावत चायन में ।
 कछु शेषसखीन को देत दोऊ, भुकि भाँकि भरोखनि भांइन में ।
 तब देखि प्रिये प्रिया की छविकों, अति रीझ परे पिय पांइन में ॥

कवित्त-भोजन को बैठे दोऊ नवल निकुञ्ज आनि, अच-
 बन मरस सुगन्ध जल कीनों हैं । चन्दन कपूर चारु सौरभ
 सों मानों अति, हाथ पोंछवेको हाथसारौ हाथ लीनों है ।

वानिरु बनाय बीरो बीरा सहचरी लार्ह, अरस परस पिय
प्यारी मुख दीनों है । दसननि खण्डित कराय आधी
आप लेत, या ही रस प्यारी लाल रहत अधीनो है ॥१२३॥

कवित्त-बीरा खवावत विनोद उपजावत कछु, छिन छिन
नई नई घातनि मिलावहीं । पीक काहू छल सो कपोलन
लगाय जात, परस कै लीने लै लै दरस दिखावही । हाथ
ही सों पोंछे मनु हाथ लिए प्यारी जू को, हाथ अपने मन
कहू हाथ फिर आवहीं । हेरि हेरि गति मन मोहन की
ऐसी भाँति, हिये में हँसीली लखि हरि मुसिकावहीं ॥

दो०-खेलत विविधि विलास रस, करत हास परिहास ।

रस सागर बिहरहि सदा, मिटै न मन की प्यास ॥

चौ०- उमड्यो तहाँ प्रेम की पुंज । सब रस वरिषत नलव निकुंज ॥

कोमल अमल सेज सुख धाम । नेक तहाँ कीनों विश्राम ॥

दो०-समय जानि तब सहचरी, निकसी सहज सुभाय ।

परम मधुर सों माधुरी, लगी पलोटन पाँय ॥१२८॥

चौ०-कबहुँक रसवातन बतरावहि । कबहुँक अरस परसहुँसि जावहि ॥

कबहुँक सैननमें मुसकाहीं । कबहु विवस है उर लपटाहीं ॥

अति रस मत्ता भए सुख दाई । सहचरि औसर की तब आई ॥

निकसत काहू नैक न जानी । आय सबै रंघनि लपटानी ॥

निरखत सुख मन करत विचार । पिय प्यारी की नवल विहार ॥

उपमा मन अनेक उपजावें । समता कों कोऊ नहि पावे ॥१३३॥

किधों तमाल लता लपटानी । कै घन में दामिनि थहरानी ॥

किधों शैल पर सुरसरि लसी । कंचन मनुहुँ कसौटी कसी ॥

जनु फूली चंपक की वेली । मधुकर मत्त करत तहाँ केली ॥

सोभित प्रिया पीय के अंक । मेघ अंक में मनहुँ मयंक ॥१३८॥

इन्द्र नीलमणि परम रसाल । खची मृदुल कंचन की जाल ॥

अंग अगरजा की जनु कीच । कुंकुम घोरि कियो ता बीच ॥

किधों हंस सारस की जोरी । बाँधे दोऊ प्रेम की डोरी ॥१४१॥

सरिता मगहुँ सिंधु में सोहै । उपमा की उपमा अब कोहै ॥

दोहा—उपमा दर्ई अनेक सखि, लागी नहि कोऊ एक ।

पिय प्यारी सों प्रिय पिया, यही गही जिय टेक ॥१४३॥

चौपाई—

जो लौं मन उपमा को दीजै । तो लौं रूप देखिवो कीजै ॥

श्यामा श्याम सेज सुख सोए । अंगन में सब अंग समोए ॥

मुख सों मुख सुखसों लपटाने । नैननि में दोऊ नैन समाने ॥

उरसों उर भुजसों भुज जोरें । प्रेम बंध छूटत नहीं छोरें ॥

दोहा—सुरभाये सुरभे नहीं, उरभ रहे यह रूप ।

अरस परसि ऐसे मिले, द्वै भे एक सरूप ॥१४८॥

चौपाई—

समय जानि सहचरी जगावति । एक मधुर रस वीन बजावति ॥

गावति एक मनोहर गीत । दुलरावति मन मोहन मीत ॥१५०॥

सोये सुनत माधुरी गान । रागरंग में परम सुजान ॥१५१॥

उठ बैठे दोऊ रस भीने । अरस परस अंसन भुज दीने ॥१५२॥

कोऊ तान मन में गढ़ि गई । सहचरि निकट बोल तव लई ॥१५३॥

जो जो सुर अपने मन भावे । सहचरि सोही फिर फिर गावे ॥

रीझि माल मोहन हँसि दीन्हों । तब प्यारी बीरी कर लीनी ॥

सैन बोलि मुख में हँसि दर्ई । माधुरी देखि विवस है गई ॥

आनंद बारि नैन भरि आये । श्रम जल कछुक बदन पै छाये ॥

अंचल सों पोंछत पिय प्यारी । सावधान करि ढिंग बैठारी ॥
 नौतन आय सिंगार बनाये । अपने बसन ताहि पहराये ॥१५६॥
 भाल बिसाल तिलक रचि कीनों । माथे मृग-मद बैदा दीनों ॥
 बेसरि नाक बनाय सँभारी । दई रीझि कै लाल बिहारी ॥१६१॥
 फूलनि को शृङ्गार बनायो । सोधों सोधि सुगन्धि मिलायो ॥
 जो भूषन निज आप उतारे । सो सहचारि के अंग सिंगारे ॥१६३॥
 अपने कर सों अंजन दीनों । मन भायो माधुरि को कीन्हों ॥
 चहुँ दिशि ते सहचारि सब आई । अपनी सोंज लिये कर धाँई ॥
 जागे नवल कुँवर जव जाने । तब उपहार सबै उर आने ॥१६६॥
 इक सुगन्धि जल पान करावत । वीरी एक बनाय खवावत ॥
 एक सखी दर्पन दिखरावत । एक चौर चहुँ ओर ढरावति ॥
 भाँके उभाकि भरोखन आई । निरखत मुख नैनन न अघाई ॥
 ठाड़ी सब दर्शन की आस । मिटै नहीं श्री मुख की प्यास ॥
 देखत मुख सब के दुख गये । संभ्रमसों सब के मन भये ॥१७१॥
 चकई चाहि तीर उठ आई । फिर चकवाने निकट बुलाई ॥१७२॥
 नाचत मोर मुदित मन भये । घन दामनि उनए जनु नये ॥
 भये चकोरन मन आनन्द । जनु प्रगटे पूरन द्वै चन्द ॥१७४॥
 धाये मधुप कमल जुग जाने । कमलिन कमल बंधु कर माने ॥
 इन्दीवर अबुज की पाती । फूली सब कमलन की जाती ॥१७६॥
 कमल नैन छवि कमल निहारत । इत उत दृष्टि नैंक नहिं ढारत ॥
 अहो प्रिये कमलन की कांति । देखत शोभा दृग न अघाति ॥

दोहा—सर्व सहेली सहचरी, लीने सबै समाज ।
 कमलन को सुख देखिये, बैठि निवारे आज ॥

चौपाई—

कालिंदी मन की तब जानी । नौका नवल साज कर आनी ॥
 कीनो पिय प्यारी को भायौ । नव नव भाँति नवारे छायाँ ॥

मुक्तन के तहाँ तने बितान । प्रगट भये कोटिक मनु भान ॥१८२॥
 मणिमय मंजुल खंभ सँभारे । हीरालाल पिरोजापारे ॥१८३॥
 ठौर ठौर बैठक मणि सोहैं । तापर ध्वजा-पताका मोहैं ॥१८४॥
 फूलनि के नव कुञ्ज बनाए । बँगला बिबिध भाँति के छाये ॥
 भाजन विविध पूरि मधु धरे । रागभोग सों पूरन करे ॥१८६॥

दोहा—सकल सोंज षट ऋतुन की, राखी सरस सँभारि ।

कौन समय केहि खेल कों, कब मन परै विचार ॥१८७॥
 बैठे आये कुँवर दोऊ, लिये सहेली संग ।
 ढप दुँ दभि और भालरी, बाजत भेरि मृदङ्ग ॥१८८॥
 एक ओर सब सहचरी, गावत अपनी मोद ।
 एक ओर सब नागरी, नागर करत विनोद ॥१८९॥
 मंद मंद नवका चलै, तिय मन के अनुसार ।
 कबहुँक मन गति ते अधिक, जात न लागे बार ॥१९०॥
 जहाँ जहाँ फूले कमल, रहें तहाँ छवि देखि ।
 बैनन मुख आवत कह्यौ, नैनन लगे निमेषि ॥१९१॥
 एक ओर फूले कमल, नील कमल के पाँत ।
 काहू रस अटके मधुप, मटक्यौ नैंक न जात ॥१९२॥
 पंकज पीत पराग में, रहे प्रेम रस पागि ।
 मधुपनि के मुख पीत की, रही पीतता लागि ॥१९३॥
 एक ओर सब तामरस, कीन्हों सरस प्रकाश ।
 निकसि चले अलि कोषते, कीयौ जनम निवास ॥१९४॥
 सुंदर सहज सरोज सब, सीतल सुखद सुवास ।
 मधुप सदा सेवत रहें, वँधे प्रेम के पास ॥१९५॥
 एक ओर कुमुदावली, विकसित मुदित सशंक ।
 तब मुखते संभ्रम भयौ, दिनमणि किधों मयंक ॥१९६॥

इन हँसन को हेतु कछु, मिटे न मन ते नैक ।
 मिले रहे निशि दिन सदा, यही प्रेम की टेक ॥१६७॥
 हंससुता तब हेत हित, तनु कीनों मणि थार ।
 अरविदन की आरती, देति वदन पर बार ॥१६८॥
 मनमोहन मन मैं कछुक, कीनों नवल विचार ।
 आज कुँवरि को कीजिये, कमलन को शृंगार ॥१६९॥
 तब वृन्दा अरविद के, लाई वृन्द अनेक ।
 बरण बरण लीने कछुक, अरुण वरण के एक ॥२००॥
 कमल नैन कर कमल सों, रचना रची अनूप ।
 शीश फूल सिर कमल को, शत सिंगार को रूप ॥२०१॥
 नील कमल की कणिका, कर्ण करी अवतंस ।
 ललित भाँति नव कमल के, लटकत फोंदा अंश ॥२०२॥
 कमल दलन कों कंचुकी, रची अनूपम भाँति ।
 लालन के छल बल निरखि, ललना कछु मुसकाति ॥२०३॥
 कमलनि के कंकन रचे, पहुँची परम रसाल ।
 कमलनि के अंगद बने, उर कमलनि की माल ॥२०४॥
 कमलनि के भूषण जहाँ, तहाँ कनक मणि कांति ।
 कमलनि की शोभा निरखी, नैन कमल न अघाति ॥२०५॥
 नाभि कमल निरखि कहूँ, मन गति है गई पंगु ।
 नवल कुँवरि को देखिये, कमलमई सब अंगु ॥२०६॥
 वदन कमल लोचन कमल, चरन कमल कर चारु ।
 कमलनि को कहा कीजिये, कमलन को शृंगार ॥२०७॥
 कमलन ते शोभा अधिक, सहज प्रकाशत अंग ।
 कमलन को शोभा भई, इन कमलन के संग ॥२०८॥
 कमलन के जल जनम को, फल प्रगट्यौ अब आय ।
 हंससुता के संग ते, एहि सुख निरख्यो पाय ॥२०९॥

पहुँचे अंग सुवास अलि, रहे कमलमें सोय ।
 संतन के सतसंग ते, सहज परम सुख होय ॥२१०॥
 कमलन की उपमा कछु, मोपै कही न जाय ।
 लालन के लोचन रहे, ठौर ठौर लपटाय ॥२११॥
 नख सिख सरस सिंगार करि, दरश दिखायो आनि ।
 मुसकानी मन में प्रिया, पिय मन की कछु जानि ॥२१२॥
 नव कमलनते लाल कौ, कुँवरि करत शंझार ।
 कमल बरन की पाग पर, राखे कमल सँवार ॥२१३॥
 करन फूल कानन कियो, कलिका कमल मँगाय ।
 कण्ठमाल नव कमल की, दीनी कंठ बनाय ॥२१४॥
 लटकत फोंदा कमल के, पहुँची परम अनूप ।
 पदिक रच्यौ उर कमल को, सब भूषन को भूष ॥२१५॥
 अरुण कमल दल को सुचिर, रचि बेदा दिय भाल ।
 पहराई नव कमल की, उर बैजंती माल ॥२१६॥
 नख सिख भूषन कमल के, शोभित परम रसाल ।
 कालिंदी फूली मनो, अमल कमल के जाल ॥२१७॥
 जब परसत कर कमल सों, नव कमलन से अंग ।
 कमल जात छुटि कमल सों, होत पुलकि सुर भंग ॥२१८॥
 आनंद उर न समात अति, देखि प्रिया अनुराग ।
 आज आपने जनम को, मानत पिय बड़ भाग ॥२१९॥
 प्यारी अपने भेद सों, राखी नाव दुराय ।
 प्रेम विवस प्रिय जानि के, लीनो कंठ लगाय ॥२२०॥
 कमल सजाती जे हुते, मिले न कवहू संग ।
 हुलसि हिये सन्मुख सबै, हंसि लपटाने अंग ॥२२१॥
 इंदीवर अरु कोकनद, सकल कुमुद के हार ।
 अरसि परसि मिलि एक भै, रह्यो न कछु विचार ॥२२२॥

अहो प्रिये या कमलते, निकस चलयो अलि धाय ।
देखउ मम उर हार पर, रह्यो अनिल लपटाय ॥२२३॥
अब तब करन सरोज पद, करते अति गुंजार ।
मन करषत नहिं कौन को, शोभा अमित अपार ॥२२४॥

कवित्त-चंचरीक चखन के आगे ते टरें न नैंक, चकित हूँ प्यारी
बलि अंचल चलावहीं । परम कुटिल ढिग ढिगते न न्यारे होत,
भामिनी अनखि भुंज लता सों उड़ावहीं । तैसेई कंकनकल बजत
ललित गति, सांवल कटाक्ष इत उत फिरि आवहीं । मधुप समूह
जानि होत हैं विकल ज्यों ज्यों त्यों त्यों मन मोहन जू मन सचु
पावहीं ॥२२५॥

दोहा—तब लालन लीला कमल, लिये ललित कर धाय ।
हुतो मत्त सुख मोद सों, दोनो मधुप उड़ाय ॥२२६॥
सावधान हूजे प्रिये, विकल होत केहि काज ।
मधुसूदन तो गृह गयौ, लीने संग समाज ॥२२७॥
हा मधुसूदन हा मधुर, हा मनमोहन लाल ।
अहो कुंवर लोचन कमल, गये कहाँ एहि काल ॥२२८॥
कै भूलो वंशी कहूँ, गये सुमन हित धाय ।
कै रूसे रस रूसनों, कै परिहास सुभाय ॥२२९॥
फिर आई सुनि सहचरी, सब रोक़ी कर सैन ।
नैंक सुनहु मुख प्रिया के, प्रेम अमृत से बैन ॥
हो प्रीतम हो प्राण पति, अहो प्रेम प्रतिपाल ।
रहे कहाँ अबलों कुंवर, बीत गये बहु काल ॥२३०॥
नवल प्रेम के पंथ में, परम अटपटी रीति ।
अनमिलनो मिलन नहीं, मिलै न मन परतीत ॥२३१॥
प्रिया विवस पिय देखके, रहे परम विस्माय ।
अति आतुर उठि धाय कै, लीनी कंठ लगाय ॥२३२॥

कवित्त—जब सुकुमारी भरि भरि लीनी अंक बारी, देखत वि-
हारी जू की न्यारी गति है गई । कहूँ दीठ डारी कहूँ श्रम कन
कारी कहूँ, पुलकित बारी सब अंगन में छै गई । विकल हैं भारी
कहूँ सुधि न संभारी कहें कहाँ मेरी प्यारी जब कंठ लाय कै लई ।
कहिये कहारी कबहुँन सुखकारी यह, मिलै हूँ दुखारी कछु नेह
गति है नई ॥२३३॥

दोहा—छिनु विछुरे ते मिलन की, परे संधि जो आय ।
तो मन में संभ्रम उठै, प्रेम विचित्र सुभाय ॥२३४॥
विवस देखि दोउ कुंवरि को, सहचरि आई धाय ।
अपनी अपनी बुद्धि के, कीने कोटि उपाय ॥२३५॥
मणि मंत्राबलि औषधी, कीने जतन अनेक ।
तंत्र मंत्र अरु जंत्र सब, लगे न कोई एक ॥२३६॥
कृष्ण नाम मंत्रावली, कही कुंवरि के कान ।
राधा अक्षर रस सने, पियहि सुनाये आन ॥२३७॥
उठ बैठे दोउ कुंवरि वर, परम अनूपम भाँति ।
सिथिल अंग रस सों सने, अरस परस अरसाति ॥२३८॥
तब प्यारी पूछत कछु, हो पिय परम सुजान ।
बिना काज अब लों कहौ, कहाँ हुते प्रिय प्रान ॥२३९॥
अहो प्रिया तब वदन छवि, निरखत लगि गये नैन ।
तब मूरति आगे चली, कछुक गूढ़ दै सैन ॥२४०॥
ता पाछे तव पगन के, चलयौ संग ही जाय ।
कर पहुँचे पहुँचे नहीं, मिले मिल्यौ नहीं जाय ॥२४१॥
कर अंतर अंतर बड्यौ तज्यो न अंतर जाय ।
दरस निकट परसन विकट, कठिन परी गति आय ॥२४२॥
जबहिं दूरि तब निकट प्रिय, जबहिं निकट तब दूरि ।
जब सुख तब दुख जानिये, सुख में दुख रह्यौ पूरि ॥२४३॥

सुरति कबहुँ सम रस कबहुँ, संभ्रम कबहुँ वियोग ।
 संजोगी बिरहा कबहुँ, कबहुँ विरह संजोग ॥२४५॥
 प्रेम अटपटी बात कछु, कहत बनें नहीं बैन ।
 कै जाने मन की दशा, कै नेही के नैन ॥
 नौका में नव कुमरि मिलि, कीने नवल विलास ।
 दीनमणि अस्ताचल चलयौ, प्रगच्छौ निसा निवास ॥
 ताही समये उदित भो, उड़न सहित उडुराज ।
 विलसत षटदस कलनसों, लीने सग समाज ॥
 देखत ही मन दुहुन के, उपज्यौ अति आनंद ।
 अति रस अपनी प्रिया सों, विलसत परम सुछंद ॥
 दृष्टि परि गयो पुलिन इक उज्जल परम अनूप ।
 जगमगाति अति वालुका, कोटिक चंद स्वरूप ॥
 देखत शोभा हिये में, उपजौ परम हुलास ।
 यहै मनोरथ मन कियौ, हिल मिल खेलें रास ॥
 सरस बसन तेहि समय के, कीने अंग सिंगार ।
 फूलन के भूषन बने, उर फूलन के हार ॥
 मोरमुकुट काटि काछिनी, उर वैजंती माल ।
 नूपुर कंकण किकिणी, बाजत परम रसाल ॥
 आय कुँवर ठाड़े भये, नवल कुँवरि के संग ।
 अहो प्रिये या पुलिन में, उपजत कोटि तरंग ॥
 छिन छिन छवि नूतन उठै, देखहु नैन निहार ।
 कहत बने नहि बैन सों, सोभा अमित अपार ॥
 कै कपूर की धूरि है, किधों चंद को चूर ।
 सरस सरोवर में किधों, धरे सुधा कन पूर ॥२४६॥
 कालिंदी को जल किधों, जग मगि रह्यो अनूप ।
 कै उज्जल रस को मनो, राजत परम सरूप ॥२४७॥

जगमगाय रहि पुलिन अति, कोटि भानकी काँति ।
 विकसि रह्यौ वासर मनौ, निशा न जानी जात ॥२४८॥
 परम मधुर ते मधुर अति, कोमल नवल अनूप ।
 अंगुरी गढ़े न रज उड़ै, राजत परम सरूप ॥२४९॥
 कालिंदी निज करन सों, रचना रही वनाय ।
 सोभा की सीमा सबै, रही पुलिन में आय ॥२५०॥
 जलधारा चहुँ दिशि बहै, सपमा कही न जाय ।
 हंससुता अपनो हृदै, राखो मध्य दुराय ॥२५१॥

कवित्त—एक ओर पुलिन के नवल नलिन फूले, एक ओर अलिन
 की पंगति सुहाई है । एक ओर कुंदन सों सरस सुगन्धि अति,
 पवन को परस परम सुखदाई है ॥ एक ओर सुमन जरद जुही
 फूली सब, तैसीये सरद सुठि सरस जुन्हाई है । एक ओर वंशी-
 बट सीमा सब सुखन की, ठाड़े हैं कुँवर तहाँ बाँसुरी बजाई
 है ॥२५२॥

दोहा—सारस हंस मयंक मृग थकित रहे सुनि गान ।
 शैल भये सरिता सबै, सरिता शैल समान ॥
 मनमोहन बोली सबै, मुरली मधुर बजाय ।
 जहां तहां ते सहचरी, सुनि आईं सब भाय ॥२५३॥
 जुरि मंडल ठाड़ी सबै, अमने जूथ वनाय ।
 मध्य लाल अरु लाड़िली, निरतत अगनित आय ॥२५४॥

कवित्त—विविध विलास के हुलास न कहि परत खेलत रसिक रास
 मंडल रहसि कै । सखिन के जोर चहुँ ओर जुरि ठाड़े भये मध्य
 घन दामिनी से रहे लाल लसिकै ॥ मुकुट की लटक चटक
 चारु चंद्रिका की आछे भाँति पीत पट बांध्यौ कटि कसिकै ।
 माधुरी की निधि रस निधि गुन रूप निधि, सब ही के मन वस

करत विहंसि कै ॥२६६॥

कवित्त-रहसि रहसि विहसनि नाना रसनि सों, रास रस खेलत रसीले रस रंग में । कोक कला कोविद सुधंग संग नाचे मिलि, उपजत कोटिक तरंग अंग अंग में ॥ कामिनी दामिनी सी निकसि दुरि जात कहूँ, कहाँ चपलाई ऐसी खंजन कुरंग में । तैसोई चपल चारु लोचन ललित अति, प्रगटत नाना गति भोंहन के रंग में ॥२६७॥

कवित्त-नृत्य लास भ्र विलास मंद मंद चारु हास, रास में विलास केलि कोटि कोटि कामनी । कुंडल मृदु गंड लोल चंचल अंचल सुलोल, श्रम कन शोभित कपोल कनक धामिनी ॥ परम मधुर करत गान लेति सरस सुधर तान, निकसत दुरिजात मन घनहुँ मेघ दामिनी । दूटत गुन कटि प्रदेश छूटत कल कुसुम केस, लूटत सुख सिंधु सरस भाय भामिनी ॥२६८॥

कवित्त-अरस परसि भुज अंसनिसों सोहै अति, रास में रसिक दोऊ रंग रस भीने हैं । माधुरी तरंग अंग अंग न समात कहूँ, झलक तरंग रंग बने पट भीने हैं ॥ लखत न कोऊ छल बल दोऊ छैलन के, काहू भांति पलट तमोल मुख लीने हैं । कौन भेद कौन भाव कौन प्रेम कौ रस, प्यारी पिय परसि कपोलन सों कीने हैं ॥२६९॥

कवित्त-सोधों आति सरस सुगंधि बहु भांतिन के, भीजे हैं वसन तन मृगमद मंदसों । चरण की माधुरी चलत मंद मंद गति खसत कुसुम कलु क्षोण भई भेद सों ॥ भांति भांति मान लैके वाम भुज अंस धरि, भामते के ढिग ठाड़ी भई काहू भेद सों । रस भरचौ रूप भरचौ सुख के सरूप भरचौ, सोभित है मुख कलु श्रमित प्रस्वेद सों ॥२७०॥

कवित्त-माधुरी की रास सब शोभा को निवास जहां, खेलत

रसीले रास मंडल वलित री । नूपुर कंकन कंठमाल कंठ शोभित है, किंकनी सुकटि कलि कूजति ललित री ॥ भृकुटी विलास मृदु पद न्यास नृत्य लास, वदन विलास कोटि मदन दलित री । मुरली की धुनि मंद मंद गति बाजति है, ताके अनुसार चारु लोचन चलतरी ॥२७१॥

स०-क्रमसों कुसुमावलि शीश गुही, कवरी कलि गूँथि दई कसिरी । उर चंचल अंचल चारु चलै चख चाहनि चित्त किये बसिरी ॥ सुठि शोभित है मुखसों श्रम के कन भाल में जाल रहे लसिरी । सबके मन सीतल सींचि किये जु सुधारस सिंधु सबै शशिरी ॥२७२॥

कवित्त-कमल से लोइन ललित अति शोभा देत कुंवर के संग तौ विराजें कोटि कामिनी । अपने अपने कर जोर जुरि ठाड़ी भई, चहुँ ओर मानों घन घेरी आय दामिनी ॥ रूप गुन गान रस एक एक ते सरस, निरतन सकल नाना भाइन सों भामिनी । रस सीम रास सीम परम विलास सीम, राजे रास-मंडल में माधुरी की स्वामिनी ॥२७३॥

क०-रास रस खेलि रस भीजे हैं रसिक दोऊ, रस बस भये रूप माधुरी निहारि कें । बैठे हैं सरस दोऊ सुमन की सेज पर, अरस परस भुज भुजनि पै डारिकें ॥ बार बार विविध विलासन सों प्यारो लाल, पोंछत है प्यारी जू के श्रम कन वारि कें । वसन सँभारि सब भूषन शृंगार कर, धरत बदन पर वेसरि सुधारकें ॥

कोमल अमल कमल फूल की सेज पर, बैठे हरषित दोऊ रास रस खेलि कें । शोभा के तरंग अंग अंग न समात कहूँ, कहूँ भांति प्यारी जू कै कंठ भुज मेलि कें ॥ करत सु अपने मनोरथ सफल आनि, जो जो उपजत मन कौतुक सहेलि कें । कोऊ हंसावति रिक्कावति बहु भांति कोऊ कोऊ मिलि गावत विलास काम केलि

कै ॥२७५॥

संग लिये सरस सहेली अलवेली सब, अरस परस पिय प्यारी
मिलि गावहीं । खरज मध्यम कल धैवत ऋषभ ध्रुव, नानाभांति
सुरन के भेद उपजावहीं ॥ कोऊ तान लीनों प्यारी पहुँचि सकै न
पिय, साधु साधु कहि जिय खरे सचु पावहीं । भीजि रहे तन
मन पुलकि पसीजे अति, रोझ रीझ पगन को माथे में उठा-
वहीं ॥२७६॥

दोहा—कीने विविध विलास रस, जो उपजो जिय माँहि ।

अब बैठो चलिके प्रिये, वंशीवट की छाँहि ॥२७७॥

कर गहि लीने कुँवरि के, निरखत मुख चहुँ ओर ।

टारी टरत न नैक हू, परत दीठ जेहि ठौर ॥२७८॥

फूले नवल निकुंज सब, उपजो परम हुलास ।

प्रिये तब अंग सुबास ते, ह्वै गयौ विपिन सुबास ॥२७९॥

वंशीवट की माधुरी, जो कहिये कछु बैन ।

नैनन रसना कीजिये, रसना कीजै नैन ॥२८०॥

सघन विपिन चहुँ दिशि बन्यौ, करि न सकत कोउ गौन ।

जे मारग निकसत कुँवरि, अखुठि करत तहाँ पौन ॥२८१॥

आय निकस ठाड़े भये, थकित रहे छवि देखि ।

मनहुँ ठगे से ठगि रहे, लगे न नैन निमेषि ॥२८२॥

वंशीवट छवि निरखि कै, विवस जात ह्वै देह ।

इमि वेली द्रुम लतन सों, बांध्यौ कोन सनेह ॥२८३॥

खग मृग द्रुम सेवत सदा, धरे सरस निज रूप ।

वंशीवट राजत मनहुँ, सकल विपिन को भूप ॥२८४॥

भूमि रही पत्रावली, छवि वरणी नहि जाति ।

फल माला नख सिख मनो, कोटि मकर की कांति ॥२८५॥

निकसे पल्लव अरुण अति, रहे प्रेम रस पागि ।

दुरथौ प्रगट कीनौ मनौ, अंतर को अनुराग ॥२८६॥

क०—बार बार रीझि रीझि कहत विहारीलाल, देखिये निहारी
प्रिये शोभा वंशीवट की । झलकत जल में झलकि नाना भांतिन
की, भूमि भूमि डारे सब धरनि में लटकी ॥ चहुँ ओर नाचत
चकोर मोर रस भरे, सारसनि लागी जह तुव नाम रटकी ।
इन सौ हितू न मोकूँ कोऊ और लागत है, कहिये कहाँ लों
कौन जानें मेरे घट की ॥२८७॥

सौं दे कै कहति प्यारी सहज सुभाई कछु, निपट अटक मेरी
परी वंशीवट सों । दूरि ह्वै ते दुति नैन निपट नौकी लागत,
आय आय शोभा नैक देखिये निकटसों ॥ झलकत भाँई तब
तन की झलक यामें, भूमि रही डारे सब जमुना के तट सों ।
ठग के ठगे से जैसे ठठकि रहित मन, ठौर ठौर रचना सु रची
कौन ठटसों ॥ २८८ ॥

नौकी भांति नैन भरि निपट निकट ह्वै कै, वंशीवट की
विलास माधुरी निहारिये । कौन कौन रचना रची है नाना भां-
तिन की, याकी सब शोभा अति मन दे विचारिये ॥ तैसी ये
सरस नव सुमन की सेज रची, विपिन विहारि सब याही में विहा-
रिये । बैठि कै शृंगार नव फूलन को कीजे भूषा, भूषन को भार
सब तनते उतारिये ॥२८९॥

श्यामा श्याम बैठे नव फूलन की सेज पर, अरस परस दोऊ करत
सिगार हैं । फूलन सों बैनी गुही शीश फूल फूलनि के, फूल रहे
फूल तन फूलन के द्वार हैं ॥ फूलन के रसन दसन तन फूलन के,
नख सिख फूले मानो फूलन के द्वार हैं । फूलन को भार न सम्हारो
जात काहू भांति, प्यारी पिय फूल हूत अति सुकुं बार हैं ॥२९०॥

काहू रस सरस सो रसिक रसीले लाल, अरस परस रस बातें
बतरावहीं । भामती सों भामते कहत सब भामते जू, भामते
की भामती तो सवै मन भामहीं ॥ पिय की जिये की सब जिय
में ही जानि लेत, अपने जिय की कछु काहू न जनावहीं । कोऊ
काहू भेद की निकसि मुख जात जब, दोऊ रिक्कवार रीम्नि
रीम्नि मुसकावहीं ॥ २६१ ॥

भीजे रस सरस रसीले रस बातन में, आरस में रसिक कछुक
अरसाने हैं । सोय गये संग नव सुमन की सेज पर, अंगन सों
अंग रस रंग लपटाने हैं ॥ माधुरी के रस में विवस भये जात
पिय, बोलत न मुख विनु बोलहुँ न जाने हैं । लालन कौ लालच
लड़ेती जू लखें हैं जब, लाज भई लोयन तो निपट लजाने हैं ॥ २६२ ॥
मन के मनोरथ करत नाना भाँतिन के, विविध विलास कौन
पार कहूँ पावहीं । सुख के समूहन में परे हैं विवस अति,
उमगि उमगि दोऊ उर लपटावहीं ॥ रसन की सीमा सब कोक
में न कही जात, जहां तहां सब देख लाजन लजावहीं ।
जैसी कछु जिय में उपजि कै समाय जात, तैसे रस रसना सों
कैसे कह आवहीं ॥ २६३ ॥

श्यामा श्याम सोए सेज सुमन सुगधि पर, रंघन लगी सहेली
करत विचार हैं । प्यारी जू कों प्यारौ तन मन में सिंगार मानों,
प्यारे जू के प्यारी उर मोतिन को हार हैं ॥ तनसुख बसन
लसत नाना भाँतिन के, लसत परसपर शोभा कौन पार है ।
देखे न अघात छिन छिन ललचात अति, माधुरी के नैनन कौ
ऐसो हिय हार है ॥ २६४ ॥

अरस परस सहचरि सुख देखि देखि, रीम्नि रीम्नि हिय में
विवस है है आवहीं । लोचन सजल कंठ प्रेम जल पूरि रह्यौ,

अपने जिय की बात काहू न जनावहीं ॥ उमपा उठावति पै
आवति कछु न कही, उपमाकौ उपमै अनेक उपजावहीं ।
माधुरी की निधि में निकसि डूबि जात फिर, फिर निकसत पै न
पार कहूँ पावहीं ॥ २६५ ॥

दोहा-छिन डूबहि निकसहि छिनक, निकसि डूबि फिर जाँय ।
प्रेम सुधा के सिंधु में, दोऊ संग समाँय ॥ २६६ ॥
कहों कहाँ लों बरनि में, वंशीवट की केलि ।
वा सुख में समझे सोई, जे निज संग सहेलि ॥ २६७ ॥
पिय प्यारी को विहरिवो, राखी हीय दुराय ।
छिन छिन रोकत अधिक तउ, निकसि निकसि मुख जाय ॥
जैसे सोये स्वप्न में, कहियत हैं कछु बात ।
मदमातो बोलत कछू, निकसि कछु है जात ॥ २६८ ॥
जाको यह सब केलि रस, जल बन पुलिन विलास ।
तिन रसना में आनि के कीनौ सदा निवास ॥ ३०० ॥
आपुन अक्षर आपु जस, आपुन कियो प्रकास ।
आपुन ही मो हिये में, है रहे परम हुलास ॥ ३०१ ॥
ललितादिक सब सहचरी, कीनो परम सहाय ।
सरस माधुरी जुगल को, निरखि सदा सुख पाय ॥ ३०२ ॥
श्री वृंदावन मोद सों, परम मधुर गुण गाय ।
नवल लाड़िली लाल को, नव नव लाड़ लड़ाय ॥ ३०३ ॥
अहो माधुरी तोहि हम, दर्ई बरन की रास ।
पिय प्यारी के संग तुम, निस दिन करहु विलास ॥ ३०४ ॥
प्रेम माधुरी मन छक्यौ, रूप माधुरी नैन ।
मैन माधुरी मन छक्यौ, छके कहत मुख वैन ॥ ३०५ ॥
श्री चैतन्य सुदृष्टि तें, विविध भाँति अनुराग ।
पिय प्यारी मुख कमल को, पायो प्रेम पराग ॥ ३०६ ॥

श्री ललितादिक सहचरी, कह्यौ कंठ भुज मेलि ।
निरखि माधुरी नैन भरि, वंशीवट की केलि ॥३०७॥
रूपमंजरी प्रेम सों, कहत वचन सुख रास !
श्री वंशीवट माधुरी, होहु सनातन वास ॥३०८॥

❀ इति श्री वंशीवट माधुरी ❀



❀ अथ श्रीकेलिमाधुरी ❀

चौपाई—

श्री चैतन्य चरण चित धरों । वन विनोद कछु बरनन करों ॥१॥
श्री राधा रसिक रसिक सहचरी । रसिकन कृपा केलि रस करी ॥
श्री वृंदावन अगम अपार । कहियत कछु कृपा अनुसार ॥३॥
श्री वृंदा जो होय कृपाल । सूझे कछुक प्रसून प्रवाल ॥४॥
सदा सनातन रूप विराजै । वरनत ही जिय अति ही लाजै ॥
अति लाजत कछु कही कहानी । जो कछु में आय तुलानी ॥
जलपत ही जिय आवत लाज । जके रहत के हुये कवि राज ॥
पूरनमासी सदा प्रकास । जाकेई सब केलि विलास ॥८॥
ताकी जोन्ह जगमगे कुंज । अंतर बाहर सब सुख पुंज ॥९॥

दोहा-वृंदावन की बात में जितै जितै मन जात ।

तितै तितै ताते अधिक, चितवत चित न अघात ॥१६॥

छं०—आगम सरस बसंत बिबिध रंग फूले तन वृंदाबिपिन
विलास । मोह्यौ मैं नैन अति बिलसति ललित लता दल
कलित हुलास । सौरभ सुभग सुवास सुखद रति बस्यौ विलासनि
अंग सुवास । मादक मधुर बिमल फल प्रगटित नवल माधुरी
केलि प्रकास ॥११॥

सो०—नवल वेश नव नेह, नव किशोर नव रंग भरे ।

नव विलास भर मेह, बरपत जनु नव बूंद ते ॥१२॥

चौपाई—

नव केशरि के कुञ्ज अनूपा । नव किशोर दोउ सुखद सरूपा ॥१३॥
रजनी शेष रह्यौ जब आई । तब सजनी बैठी अकुलाई ॥१४॥
अपनी सोंज सबै कर लीये । भाँकत नैन भरोखन दीये ॥१५॥
कोउ बीना कर मधुर बजावति । कोउ सांरगी सरस सुनावति ॥
कोउ रागिनि सों राग मिलावत । कोउ भैरव विभासहि गावति ॥
सोये सुनत सुघर वर राय । यह तन दृष्टि परी फिर जाय ॥
नैना बहुरि गये ललचाय । अति सरसोहें उठे जँभाइ ॥
लपटि रहे दोउ ललित भाँति । श्यामा श्याम प्रिय गौर वांति ॥
दोहा—एकै मन एकै सु तनु, एकै चिन्ह चिन्हार ।

प्रिया पीय कै पिय प्रिया, कछू न होत बिचार ॥२१॥

स०—सैन करचौ सुख सेज सुगंधनि, रैन जगे रति नैन लगे हैं ।
चैन परे न विना चितवे, मुख वैन कहैं कछु प्रान मिलै हैं ।
जीय उपजै सोई जान कहैं, जनावत लोचन के ढिग जाँ हैं ।
हेरि प्रिया पिय के हिय की गति भौंह चले चख चारु हँसौ हैं ॥

सो०—नैनन हीं बात, नैनन में दीनी सकल ।

बहुरि कछू मुसिक्यात, सुधि न परे तेहि घात की ॥२३॥

चौपाई—

छल नव छैल बहुत विधि जानत । ताते छगुन छवीली भानत ॥
छवै न सकत छवि की एक छटा । विन कटाक्ष छाया बुधि घटा ॥
अवनति छुटी अलक उलटावति । सुरभी कछुक अधिव सुरभावति ॥
पोंछत पलकन पीक कपोलन । डगमगात कर नैन सलोलनि ॥
हँसि हँसि हिये हार कर परसत । कवहुँक मिसते मनिदूति दरशत ॥
अहो नागरि यह नग दुति न्यारी । प्रगटी कुञ्ज भवन उजियारी ॥

भामती भोर भयो मति जानहु । जो हम कहत सों जिय में आनहुँ ॥
छिपै न छत्र छांह शुक्रन की । शशिन प्रकाश सघनता बन की ॥
दोहा—दिनकर तें दुति दस गुनी, दिपै देह की जोति ।

किरन मनो बगरी सकल, उगरी अरुन उदोति ॥३२॥

छ०—अरस अंग रस सरस दरस रस दूल्है दिखरावति ।

अरस गात मुसकात बात बहु भाँति मिलावति ।

कबहुँ कपोलनि केलि मकर पत्रिका सँवारति ।

स्वेद सकल तन होत सिथिल गति मति न सँवारति ।

कर धरत रहैं भुकि धरनि पै, बरन पलट तेहि छिन गयो ।

नब करन कुँवरि मन हरन को उमगि लाय उरसों लियो ॥

दोहा—बिवस भये पीय देखि, विलगि भई कछु देह गति ।

लिये लाल उर लेखि, लटकि रही सुख सेज पर ॥३४॥

चौ०—नवल ओढ़नी ओढ सुरंग । लपटाने अंगन सों अंग ॥३५॥

बिना पान मुख पान खवातति । बिना दरस आदरस दिखावति ॥

बिन दुकूल कंचुकी उर धरै । भूषन बिन सिंगार सब करै ॥

करत मनोरथ जो मन भावति । जिय की बात पियहि न जनावति ॥

ज्यों ज्यों चपल होत नव नागरि । त्यों त्यों सरवस बाम उजागरि ॥

दीठ ओढ कर दीठ बचावति । पद नख छटा न परशन पावति ॥

दोहा—लोचन लोभी लाल के, लगे लगोहीं भाँति ।

छूटे न छिन छवि के छुवत, छाया ज्यों लपटात ॥४१॥

छ०—सेज सुधा निज सरस भूमि मंडित सुवास बन ।

त्रिमल बीज पिउ वै लता चम्पक तमाल तन ।

सींच सुरति रति बारि नव कुञ्ज केलि कर ।

नव दल नेह बिलास हास कुसुम रहे ढरि ।

मालि मनोज नव चोज कोष फल उरोज सुफल फले ।

अति ललित बास रस वलित है आली अलि लोचन चले ॥४२॥

सो०—फूली चम्पक वेलि, भूली श्याम तमाल सों ।

अरुभी नेहनि वेलि, कठिन भयो सुरभायवो ॥४३॥

चौपाई—

फूली लता देखि बहु भाँती । सैनन में सजनी मुसिकाती ॥

फूले अङ्ग विविध रंग फूल । फूले मन तन सेज दुकूल ॥४५॥

फूले सैन फूल बहु रंग । नवल प्रीति सुठि सरस सुरंग ॥४६॥

फूलन के तन सरस सिंगार । फूल हिये फूलन के हार ॥४७॥

रोम रोम मौरी सुकुँवारी । नख सिख सों फूली फूलवारी ॥४८॥

फूली देखि फूली सहचरी । समझ जानि सेवा अनुसरी ॥४९॥

अधिक भार फूलन के दुरी । बिनती फूल फूल सों भरी ॥५०॥

दोहा—तन मन बन सब को रह्यौ, सरस फूल सौ फूल ।

साखा पत्र प्रसून पर, परे मधुप रस भूत ॥५१॥

क०—कौन पहिरै दुकूल भूषन विकूल सब, फूल हू को भारन संभा-
रयो क्यों हूँ जात है । अति सुकुँवार तन शोभा को सिंगार
किये, हास हू को हार हार हिये न समात है । सिथिल
शरीर सों रसीली मुख भीर अति, सौरभ समीर सों रसीली
अरसात है । कह्यौ नहि जात कछु मन अकुलात तहाँ, तन की
निकाई जैसे नैनन की बात है ॥५२॥

सो०—लिये फूल बहु भाँति, किये हिये के हार रचि ।

आनंद उर न समात, फैल रह्यौ सब फूल है ॥५३॥

चौपाई—

एक फूल नैनन पर धरे । सीतल जानि सबै दुख हरे ॥

एक माल करि कंठ लगावति । इक कानन अवतंस बनावति ॥

एक फूल बीनत हैं जहाँ । फूल फूलत चौगुने तहाँ ॥

लटकि रही फूलन के भार । फूलहुँ ते ए लता सुकुँवार ॥५४॥

जो पै नहिं तमाल लपटाति । तो पै भुकी धरनि पै जाति ॥
 तरु तमाल के चंचल पात । प्रेम पवन वस पुलकित गात ॥
 भुकि रही डार फलन में आई । जनु फल फल डार सों जाई ॥
 छिन छिन छाँह लता पर किये । लता परस मधु करषत हिये ॥
 दोहा—कौन मिलन कौने ढरनि कौन परनि को भाव ।

परि गइ लता तमाल सों सु कौन भाँति उरभाव ॥६२॥
 क०—नैन अरसीले सु रसीले अति रस भरे, बिबस बसीले औ
 रंगीले रगमगे से । निपट हठीले अरबीले रस कीले तन, गुनन
 गसीले वार वीले रंग पगे से । कछु मुसकोहै तिरछोंहें सकुचोंहें
 कछु, होत जात नोहैं मन गौहैं मन पग लगे से । ललित लसोंहें
 कछु लालव लगोंहें जनु सावक जगोंहें ढिग डोलें डगमगे से ॥६३॥
 सो०—बैननकी गति और और नैनन की कछु और गति ।

लगहि जाहि जेहि ठौर, ठौर रहे तेहि ठौर हीं ॥६४॥

चौपाई—

अति रस भरे उठे अरसाने । अंक मोरि करजोर जंभाने ॥६५॥
 अंग अंग देखे सबै लुभाने । मन मनसा सों फिर लपटाने ॥६६॥
 हरषत भाल लोभ की ठौर । सरकत पान परस को दौर ॥६७॥
 धरकत हियौ भरत अंकोर । छिन छिन होत और की और ॥६८॥
 जियमें उपज बहुत विधि धरै । प्रिया पान दरशन अनुसरै ॥६९॥
 दरशत प्रेम उदधि में परै । हाथन हाथ कह्यौ कछु करै ॥७०॥
 छियौ न जात पगन परछाँ । कठिन मनोरथ जियके जहाँ ॥७१॥
 मनहूँ को प्रवेश नहीं तहाँ । पाँयन परस सो परसन कहाँ ॥७२॥
 दोहा—कोमल कोमल ते अधिक, मधुर मधुर को सार ।

पुहकर हिमकर हेम की, सौरभते सुकुंवार ॥७३॥
 क०—उर न धरत कर कोमल किशोर प्रिय, कमल के पात लै लै
 गात सों लपेटहीं । लागत हैं भाँई मेरे तन की प्रिया के तनु मत

कहूँ श्यामताई लगे सोई मेंटहीं । रंग रंग फूते लै लै अंगन दुरा-
 वत हैं, निज पर छाँही सब अंग में समेटहीं । वार वार परसि
 के देखत ऊपर सैन, कछु भ्रम भयो भरि भुजा सो न भेटहीं ॥७४॥

सो०—परसे परस न होय, बिनु परसे ते विकलता ।

पूरेहु सब तन तोय, चितै चित्र से ह्वै रहे ॥७४॥

चौपाई—

तब प्यारी कछु जतन उपायौ । चंपकलो ते मधुप उड़ायौ ॥७६॥
 नीलसार लै अंग छुवायो । तौ न कछु विश्वास जिय आयो ॥७७॥
 मृगमद को तन लेप लगायो । नील कमल तन परस दिखायो ॥७८॥
 नीरज नैन तौऊ भरि आये । तन प्यारी हँस कंठ लगाये ॥७९॥
 अहो लाल गति कौन तिहारी । चिबुक उठाय कहत हैं प्यारी ॥८०॥
 बोलहु नैक बोलि हों हारी । गई कहां चतुराई तिहारी ॥८१॥
 अंचल लै पोंछत चख वारी । पहिरावति उर हार उतारी ॥८२॥
 तऊ न हिये कछु होत संभार । परि गये कहूँ प्रेम के धार ॥८३॥
 दोहा—निपट कठिन गति प्रेम की, कठिन ते कठिन सरूप ।

काढत जल तिय घड़न कों, परत पहेलहिं कूप ॥८४॥

क०—मोहन की गति देखि भूली गति मति सब, मोहनी उतारिवे
 कों जतन करत हैं । हार की लै मनि हरि हीये सों छुवावत हैं,
 कबहुँक हरि मनि कंठ लै धरत हैं । कानन में कामकेलि मंत्र पढ़ि
 डारति हैं वैन उचारत नैक नैन उघरत हैं । औषधी तंबोल करि
 खंडित खवावति हैं, अधर सुधा सों मुख सींचवो करत हैं ॥८५॥
 सो०—परी सुरत जिय आय, रोम रोम भई सरसता ।

देखहु सुधा सुभाय, मोहन को मोहन कियो ॥८६॥

चौपाई—

उठे लाल औरै कछु भाँति । सिथिल गात सोभा न समाति ॥
 कहत बात जिय अधिक सकात । कहुँ कछु नैनन मुसकात ॥८७॥

प्रिया आजु सुपनों कछु पायौ । जनु कर गहि निज कंठ लगायौ ॥
 उर को हार हिये पहरायौ । हँसि हँसि कहत सु कहत न आयौ ॥
 दोहूँ मिलि पहिरायो एक चोल । अरु दीनों निज मुखहि तमोल ॥
 कानन बात भेद की कही । सो कछु जिय थोरी सुधि रही ॥
 इन बातन को चित ललचावै । और कछु देखौ नहि भावै ॥६३॥
 जो मन विकल विथा सब हरौ । जोई जोई कियो सोई फिर करो ॥
 सुपनो आज साँच करि पाई । तो पग ते पल पल न चलाई ॥६५॥
 कहौ दृगन हँसि देखे नये । सुपने कहूँ साँचे हैं भये ॥६६॥
 मन की नेंकु निठुरता हरौ । अबही सुपन साँचो सब करो ॥६७॥
 हरी निठुरता हो अति साँच । एहि तो कियो अधिक तुम बाँच ॥
 कैसे करौ कहो तुम सोई । कहिये ताहि न जानें कोई ॥६८॥
 कहौ अचानक कछु हम जानत । तो तुमसे कछु बल हैं मानत ॥
 ठानहुँ बल जो पै कछु ठनै । हम को बल जैसो कछु बनै ॥१०१॥
 कैसे जैसे सदा सुभाय । कै रोयबो कै छुड़बो पांय ॥१०२॥
 दोहा--बीज नेह को रोयबो, दल रोयबो सरूप ।

मूल फूल फल रोयबो, ये रोयबो अनूप ॥१०३॥

चौपाई--

ढरकें नैन देखि अति भारी । करी कृपा वृषभानु दुलारी ॥
 जो जो मनहि मनोरथ कीये । सो सो सबै दुलहिन दिये ॥१०५॥
 सो०-गयो रोयबो रोय, और सोयबो इन दयो ।

सब दुख सुखहि समोय, जगे जु काहू जगत में ॥१०६॥
 क-अरस परस अरु वरषै बिलास रस, दरसें न दीन छीन निशा
 नव रंगमें । नागर नवल गुण सागर विहार बार, बार बार परें
 ढरि उछरि उछंगमें । हास परि हास कै प्रकाश में सुवास अति,
 हिये के हुलास को हुलास सखी संग में । उठत तरंग नाना रंगन
 के अंग अंग, रसन की रासि होत भौहन की भंग में ॥१०७॥

सो०-नेह रगमगे नैन, वैन रगमगे मैंन सों ।

सरस रगमगी रैन, बिबस रमी सुख चैन सों ॥१०८॥

चौपाई--

नवल रंग नव रंग रगमगे । नव संगम नव अंग सगवगे ॥
 नव पर्यंक रति जोति जगमगे । नख सिख नव सिंगार डगमगे ॥
 शिथिल पाग जावक रंग भरी । शोभित लाल भाल पर खरी ॥
 प्रिया वनाय भाँति तेहि धरी । देखहु कौन ढरनि सों ढरी ॥११२॥
 सरकी सिथिल सुरंग रंग सारी । तरकी तन कंचुकि सुकुँवारी ॥
 करकी चुरी करन ते न्यारी । ढरकी कहूँ मांग मुक्तारी ॥११४॥
 गलित कुमुम रस वलित सुदेस । कलित चलित गति बिलुलितकेश ॥
 पलटि परे पट तिलक तमोल । कुंकुम कज्जल पीक कपोल ॥११६॥
 दोहा--अदल बदल तनु है रहे, उलटि पलटि शृंगार ।

अजहूँ लों गथ गांथ की, नेक न होत सँभार ॥११७॥

छप्पै-उन्यौ नव रस मेह नेह निसि वरस परस पर

चुरी मेंड़ सब चुरी आड़ कहूँ दुरी महावर

श्रम कन सलिल अपार पलक खग प्रेम पसीजें

सकत न पंख पसारि जुगल खंजन रस भीजें

उड़ि सकत न सिथिल सुभाव ते सुचपल चपलता मिट गई

हृदै भरे सरोवर सहचरी, सुनहु विलास बरषा नई ॥११८॥

सो०-नवल नेह के मेघ, महा मत्ता बरसत सदा ।

छिन छिन सहज सनेह, पोषत बाग बिलास कौ ॥११९॥

चौपाई--

सरस भूमि देखी अति भारी । रति मनमथ मिलि करी कियारी ॥

दशन बीज नाना फुलबारी । रची रसनि भर अधर पनारी ॥

श्रम जल बूंद बदन पर हरी । कछुक ढरकि मुक्ता पर परी ॥

बेसरि उलटि भाँति केहि धरी । सींचत वदन सीस जल भरी ॥

क०-सेवत मदन नित सघन विलास बन, अपनी हुलास रस
सींचत सिरानी है। मोहन ते मोहन मधुर ते मधुर अति, माधुरी
लता की मृदु बेलि सरसानी है। दुति दल फूल फल फूलि रहे
अंगनि में आली अलिन की मिलि कैसी ललचानी है। ऐंड़ी
वैदी आछी नीकी कैसी अलवेली गति, कौन भाँति नवल तमाल
लपटानी है ॥१२४॥

दोहा—केलि माधुरी सिंधु के, कोऊ न पावत पार।

मन वच क्रम निशि दिन सदा, जीय विचारि विचारि ॥

विपिन सिंधु रस माधुरी, कृपाकरी निज रूप।

मुक्ता मधुर विलास के, निज कर दिये अनूप ॥१२६॥

सो०-जिन मुक्ता की माल, गुही हिये हरि गुन सरस।

उज्जल परम रसाल, सब अंगन भूषन किये ॥१२७॥

दोहा—केलि माधुरी बेलि की, छिन छिन लेहु सुबास।

होहि सदा सुख सहज ही, श्री वृंदावन वास ॥१२८॥

संवत सोलह सै असी, सात अधिक हिय धार।

केलि माधुरी छवि लिखी आवण बदि बुधवार ॥१२९॥

❀ इति केलिमाधुरी समाप्त ❀

अथ श्रीवृन्दावनमाधुरी

दोहा—कृष्ण रूप चैतन्य की, सदा सनातन केलि।

गिरि बन पुलिन निकुंज गृह, द्रुम द्रौणी बन बेलि ॥१॥

सदा एक रस रसिक वर, विहरत सहज सुभाय।

प्रिया पीय के जीय में, तिय जिय पीय समाय ॥२॥

सो०-जिय जानें यह बात, कहत न आवे बात कछु।

फिर फिर हिये समात, पिय प्यारी को विहरवो ॥३॥

बरनन आवत लाज, बन ससाज कैसे कहों।

कृष्ण केलि को साज, कहि न सकें कविराज कछु ॥४॥

दोहा—श्री वृंदा वृंदाविपिन, कृपा करी निज रूप।

बन विहार की माधुरी, बरनत परम अनूप ॥५॥

मधु माधव ऋतु मोद सों, फूले सुमन सुबास।

बन विहरन मन दुहुँन के उपज्यौ परप हुलास ॥६॥

चौपाई—

वृंदा बात दुहुँन की जानी। तब मन की अति सरसानी ॥७॥

बेलि वृन्द को दियो निदेस। तुम पहिरौ सब नव सत वेस ॥८॥

नख सिख अंगनि करो सिंगार। फूल वसन फूलन के हार ॥९॥

दोहा—आजु प्रिया संग प्राणपति, करि हैं विपिन विलास।

फूलहु सुमन सुबास सब, जाके मन जु हुलास ॥१०॥

क०-आजु है सुदिन पिय प्यारी जू समाज लिये, उपज्यौ है

कौतुक विपिन रस केलि को। अपनी अपनी चौप कोनी है प्रकास

बन, कह्यौ न हुलास जात कछु द्रुम बेली को। ललिता बिशाखा

रंगदेवी औ सुदेवी सब, पूर्यौ मनोरथ सखी जनम सहेली को।

केहो केहो काहू भाँति हाहा करि प्रान पति, कर गहि प्यारी लै

चलें है वन केलि को ॥११॥

दोहा—आवति जाने प्रान पति, प्रिया सहित बन केलि।

सब अपनों उपहार लै, चली लता द्रुम बेलि ॥१२॥

चौपाई—

सघन विपिन मारग छवि आये। कुसुमन पग पाँवड़े विछाये ॥

है गई भूमि सकल हरियारी। जहाँ पग धरत धरनि सुकु मारी ॥

पल्लव पवन परसपर करहीं। द्रुम फूले सन्मुख अनुसरहीं ॥१५॥

पंचम सुर कोकिल कल गावै । मिलि मोरनी निसान बजावै ॥१६॥
 बरन बरन बन बेलि सिंगारी । सोभित नव दल रंग रंग सारी ॥
 पवन परस हित लता दुलावत । उतकंठा मिलिवे कों धावत ॥
 राजत नैन सुमन रस भरे । अति गोलक तिनमें अनुसरे ॥१६॥
 दोहा—मधुप सुमन रस छाँड़िकै, चले बदन रस ऐन ।

पिय प्यारी के लैन को, पठई पुतरी नैन ॥२०॥

वृन्दावन की माधुरी, मन को मन हर लेत ।

अपने सहज सुभावते, सब अंगन सुख देत ॥२१॥

क०—नैनन को सुख नव नवल निकुंज गृह, कछौ न परत है
 हुलास कछु मन को । कुसुम सुवास कैसे नासिका को देत सुख,
 देत सुख कानन को गान मधुपन को । रसना को सुख कैसे सरस
 रसाल फल, पवन परस कैसे होत सुख तन को ! चातुरी सों
 ऊँचे चारु चिबुक उठाय कछौ, अहो प्रिये देखिये निहार सुख
 बन को ॥२२॥

दोहा—वृन्दावन की बात कछु कहत बने नहिं वैन ।

नैन समाने विपिन में, विपिन समाने नैन ॥२३॥

मुकुलित मल्ली मालती, मंजुल मधुर सुवास ।

जुही सुही फूली सवै, अपने सहज हुलास ॥२४॥

कूँजा करणा केबड़ा, कणिकार कल्लार ।

बेलि चमेली मौलश्री, अति सौरभ सुकुँवारि ॥२५॥

किशुक केवरि कदलिदल, कृत्यमालि कचनार ।

कुंदी कुंद सुकुंदनी, पारिजात मंदार ॥२६॥

चंपक को चंपकलता, दीनों कंठ लगाय ।

ए दूल्हा और दुल्हिन, दोऊ सरस सुभाय ॥२७॥

सरस सेवती लतनिसों, लपटेहु श्याम तमाल ।

निपट कटीली नायका, नायक परम रसाल ॥२८॥

लता माधुरी अति मृदुल, मोदकमई सुख जोग ।

उरभी कठिन कदंब सों, कौन बन्यौ संजोग ॥२९॥

बक्र ठरनि बक्रहि चलनि, बक्र मिलन गति केलि ।

तरुवर सरस सुभायते, सहज बाम पर वेलि ॥३०॥

सहज लता कोमल सरस, फूलि रहत निशि भोर ।

मन कोमल तन बक्रता, तरु तन मनहि कठोर ॥३१॥

सब कुसुमन में केतकी, जस सौरभ रह्यौ छाया ।

मधुप कठिन कंटक सहै, तऊ अनत नहिं जाय ॥३२॥

लंपट लोभी लालची, इनहिं कछु नहिं लाज ।

आदर अन आदर कहा, निज कारज सों काज ॥३३॥

हेमजुही के कुसुम पर, रह्यौ मधुप लपटाय ।

जनु बैठो शृंगार रस, कनक सिंहासन आय ॥३४॥

यह न होय शृंगार रस, अरु नहिं मधुप रसाल ।

सब कुसुमन मिलि दीठ उर, दियौ दिठौना भाल ॥३५॥

कुसुम कुसुम रस लेत अलि, मुख पराग लपटाय ।

नवल माधुरीलता को, छुवन न पावत पाँय ॥३६॥

क०—मौन गहि बैठी नेकु माननि मनाय कछु, मानिनी लता हो

मान कैसे मन धारो है । एक रस काहू सों न रस के सुरस रह्यौ,

एक सुमन ही मन नीरस संवारो है । आवत मधुप जानि माधुरी

लता के दिन, प्रथमहि आनि पौन पायन निहार्यो है । आगे

सहचरी सावधान है प्रकाश किया, परसि न देत पाँय परि परि

हार्यो है ॥३७॥

दोहा—प्रिया सहेली रसिक पिय, सहित मखी रस रास ।

विहरत डोलत विपिन वर, बात बात पर हास ॥३८॥

चौपाई—

फूलि रही चहुँदिश फुलवारी । चंपक बकुल गुलाब निवारी ॥

देखहु प्रिये विपिन की शोभा । उपजत है कछु मन कों लोभा ॥
 छाँड़हु लता मान घर संग । है है कछुक रंग में भंग ॥३६॥
 कहूँ सुरंग दारिम सुमनाली । कहूँ रस भरे करक फल पाली ॥
 कहूँ तमाल कदम्ब रसाला । कहूँ डोलत मधुपन की माला ॥४३॥
 कहूँ बोलत कोकिल कल बानी । लोलत कहूँ लता सरसानी ॥
 नाना विधि के कुंज अनूपा । गुंजत खग वर पुंज सरूपा ॥४५॥
 एक कुंज सोभित हरियारी । एक उज्ज्वल एक अरुण सिंगारी ॥
 एक पीत पीतहि रंग रंगी । एक साँवरे रंग सगबगी ॥४७॥
 एक कुंज केसर की नीकी । अहो प्रिये मम जोवन जी की ॥४८॥
 एक नागरि केशरि की न्यारी । एक प्रेम पुत्राग सँभारी ॥४९॥
 मन को हरन मैं एक कुंज । जहाँ तहाँ मधुपन के पुंज ॥५०॥
 शोभा ललित रस नवल कुंजकी । चंचल मन गति चलत लुंजकी ॥
 जहाँ तहाँ कुंजनि की काँति । सेत अरुण फूली बहु भाँति ॥५३॥
 सरस कुञ्ज सिंगार हार की । रटत कुसुम मन गति सुकुँवार की ॥
 रची सेज घर कुसुम चारु की । सुरत होत मन रस विहार की ॥
 दोहा—सप्त वरन के कुञ्ज को, सबते सरस प्रकाश ।

फूलि रह्यौ पश्चिम दिशा, पत्र प्रसुनसुवास ॥५३॥
 बाम दिशा वारिज विविध, विकसि रहे बहु भाँति ।
 पवन परम डोलत नहीं, मुख छवि पर बलि जात ॥५७॥
 दक्षिण सरस अशोक के, शोक रह्यौ नहीं गात ।
 अहो प्रिये पद परसिते, अति अनुराग चुचात ॥५८॥
 सन्मुख श्री संकेत की, शोभा कही न जाय ।
 ललित लता चहुँ ओरते, रही कंठ लपटाय ॥५९॥
 मुक्त लता चंरक लता, पाटल परम रसाल ।
 चहुँ ओर राजति सरस, विशद कंदम्बनि माल ॥६०॥

जलसुगंध सरवर रचे, तरवर परम रसाल ।
 कुमुमावलि पट ऋतुन की, प्रगट एक ही काल ॥६१॥
 अलि कुल खग कुल हंस कुल, करत कुलाहल मोर ।
 अति रसमय सरिता सरस, बहत कुंज चहुँ ओर ॥६२॥
 क०—मध्य कुंज माधुरी को मंजुत मधुर अति, गुंजत मधुप
 कौन विधि सों सँवार्यो है । कुसुम सुवास सब कौनों है सुवास
 मय, जानों मैं विपिन ते मथि के निकार्यो है । सोभा सब सोभा
 की सकेलिकै सची है यामें, मदन सदन निज सुख कों सिंगार्यो
 है । परम विचित्र सेज सुलभ सँवारी न्यारी, प्यारी जू तिहार्यो
 इन आगम विचार्यो है ॥६३॥
 दोहा—देखहु प्रिये निहारि के, नव निकुंज सुख रास ।
 ठौर ठौर वृन्दा रची, नव नव भोग विलास ॥६४॥
 चहुँ ओर या कुंज के, शोभित चौसट द्वार ।
 द्वार द्वार में सहचरी, राजत परम उदार ॥६५॥
 मध्य माधुरी कुंज के, सरस सहेली आठ ।
 एक एक ही आठ हैं, होत चार और साठ ॥६६॥

चौपाई—

आठ कुंज आठन के न्यारे । नव निकुञ्ज के रचे ढिगारे ।
 कहूँ भूमि मणिमय उजियारी । कहूँ कंचनकी सरस सँवारी ॥
 कहूँ मुक्तन के चौक बनाए । विद्रुम फटिक विविध रंग लाए ॥
 कौन भाँतिकी सेज बनाई । कहाँ कमल दल कोमलताई ॥७०॥
 निरखत तन गति रही भुलाई । मन है गये मदनमय माई ॥७१॥
 दोहा—बन बिहरत तन श्रम भयो, नेंकु करहुँ विश्राम ।
 सफल होय जो आज यह, नव निकुंज सुख धाम ॥७२॥
 बन बिहार को सोंज सुख, सब लसत तन माँहि ।
 फल दल सुमन अनेक रंग, चाहत चख ललचाहि ॥७३॥

स०-विहार सबै बन को तन में, जुरचौ रमि कै मम प्राणन में ।
 कदरी कुसुमाबलि कुंदलता, विकसे अलि अम्बुज आनन में ॥
 शुक सारस कोक कपोत सिखी, प्रगटी पिक पंचम गानन में ॥
 नव बैन फुरें सुरे रंग खरे विहरें, नित काम के कानन में ॥
 क०-मो मन मनोरथ उठौ है आज प्यारी कछु कहत हों हा हा
 खैहों कहो कछु मानिये । माधवी कुसुम लै लै मंडल सकल अंग,
 मंडित करों हों कहो मीठी मृदु बानिये । आपन पौढिये परजंक
 हों पलोटी पाँय, मन बच क्रम कछु और जो न ठानिये । मेरो
 मन सेवा को सदा ही ललचात रहै, मोकों कोई अपनी सहेली
 करि जानिये ॥७५॥

सो०-बनि कुसुम बहुत भाँति, नागरि के आगे धरे ।

देखि लाल ललचात, चित्यौ भरि अनुराग सों ॥७६॥
 स०-माधव मंदिर में मन मोहन मंडित केलि मनोज मईरी ।
 कुसुमाबलि कामिन की कवरी कल ग्रन्थित भाँवति बात टई री ॥
 पटसों लखि पोंछि महा नटरी घट में घट भेद की बात ठई री ॥
 मुख सोंहै करै कर टार धरै, फिर सोंहै करै रति रंग रई री ॥७७॥
 दोहा-करें मनोरथ पीय के जो कछु उपजै जीय ।

पौढी प्रिया उछंग में, पाँय पलोटी पीय ॥७८॥
 क०-नयो नेह नई रुचि नवल समागम में, नई नई वाते नव
 नागरी बतावहीं । चरण पलोटी चूमि नैनन सों छूय छूय, पलकन
 पोंछि पोंछि हिये सो लगावहीं । अंगुरी परसि कर परसि हिये
 की हार, उर को परसि प्यारी रस ढरकावहीं । ज्योंही
 ज्योंही देखे रुचि नवालि किशोरो जू की त्यों ही त्योंही मोहन जू
 मन लिये आवहीं ॥

दोहा-जेही रस प्यारी चलत, पिय तिहि चलति सुभाय ।

प्रिया सरस रस ढारही रस बातन बतराय ॥७९॥

क०-सोंधों लै सुगंध अंग बसन वनावत हैं, नाना रस रसनि के
 रहसि उठावहीं । इत उत कीनी कछु घातन मिलाय आनि, नवल
 किशारी जू को बातन हँसावहीं । पोंछत कपोलन में पीक जो
 लगो है लाल, लै लै कर बार बार दर्पन दिखावहीं । मनके सया-
 नन को और कछु आवत न, जानन सों स्यान स्यान कहाँ लों
 जनावहीं ॥८०॥

दोहा-पीय प्रिया के परस कों, कपट करत बहु भाँति ।

जो उपजत इन के हिये, जानि पहिल ही जात ॥८१॥

क०-कंचुकी कसन मिस रसन सिथिल करि, बसन सुधारे मुख
 हसनि दुरावहीं । अंग अंग भूषन सिंगारत हैं बार बार, बैनी
 की बानिक नाना भाँतिन बनावहीं । बेसर की मोती परस करें
 सरस रस, रसिक रसीली जू को रसन रसावहीं । जानी सब
 मन की कहानी मन मोहन की, रानी आना कानी कीये बानी
 मुसकावहीं ॥८२॥

दोहा-वे प्रवीण चौंसठ कला, ये चौंसठ सत कोटि ।

पीय पाद बत लगत नहीं, प्रिया रूप की जोटि ॥८३॥

क०-प्रथम ही रूप कर देत न करन आगे, जतन करत पै कछु न
 बनि आवहीं । आगे एक बामता सहेली सावधान रहै, सुरत के
 समैं प्रवेश हू नहीं पावहीं । चातुरी चमूको कहूँ ओर छोर पावत
 न, मोहन इकलो मन कहाँ लों चलावहीं । हाहा एक हितु हरी
 आपनो सहाय कियौ, तोहि पै बनेगी पग साथो जाय नाबही ॥८४॥

क०-कछु न बसाय तब जाय गहि रहे पाँय, प्यारी जीय जान्यौ ॥
 पिय परम प्रवीन है । बैनन न बोली हंसि नैनन जनायो कहि, मैत
 पुरि ते निदेस सैनन सों दीनों हैं । इनके निदेस मानि काहू की न
 कीनी कानि, मान गढ़ बढ्यौ आनि बासो अति लीनों हैं । जे
 जे प्रतिकूल अंग कीने अनुकूल संग, खंडि के पसाय मंडि कैसो

गंड कीनौ है ॥८६॥

दोहा—प्रिया देस तन आज सों, अकर वसायौ मैन ।
जब सर लाग्यो काम कौ, कुटिल भई सब सैन ॥८७॥

क०—करके लगे ते ठौर ठौर कलमलि उठि, काम के मिलन को न
कोऊ ढिग आयौ है । ढीठ हूँ गये हैं लोग कानि कछु मानत है,
तब मनमथ मन अधिक रिसायौ है । कोऊ खंड कोऊ दंड बंधन
सो बाँधि राखे, नृपति अनंग बल आपनौ जनायौ है । काहू सों
मिलाप कीनौ काहू कों तमोल दीनौ कोऊ बाँह बोलि बास सुबस
बसायौ है ॥८८॥

दोहा—निपट बाम गढ प्रिया तन, केहि विधि कियौ प्रवेश ।

अकर देश पकर कर सों, बढ्यौ अनंग नरेश ॥८९॥

क०—माधुरी निकुंज मनमथ राज मैन पुरी, देस सुख बसो है जू
सदाई सुवास सों । बन उपवन औ सुमन नाना भांतिन के, रच्यौ
है मदन निज सदन हुलास सों । नाना रस बरन बरन नाना
रगन के, नाना विधि बेलि केलि कीजै सुख राससों । मोहन वि-
लासी निज करहु विलास रस, टरहु न सहचरी कहूँ ढिग पास
सों ॥९०॥

दोहा—बन बिहार रस माधुरी, सहज परै जेहि कान ।

श्री वृन्दावन केलि विन, ताहि चैन नहि आन ॥९१॥

जो गावहि सुमरहि सदा, मन बच विपिन विलास ।

ते पावहि सुख सहज ही, श्री वृन्दावन बास ॥९२॥

जो लालच कोटिक मिलै, तौ न चित्त ललचाय ।

तजि वृन्दावन माधुरी, सुपने अनत न जाय ॥९३॥

❀ इति श्री वृन्दावन माधुरी समाप्त ❀



दोहा—निशिदिन चित चिन्तत रहों, श्री चैतन्य सरूप ।

वृन्दावन रस माधुरी, सदा सनातन रूप ॥१॥

गयो तिमिर तन को सबै, निरखत विपिन विलास ।

दान केलि ससि कौमुदी, कीनी किरन प्रकाश ॥२॥

क०—बरसा की ऋतु बरसाने ते चली है विचित्र गति, वृषभानु
नंदनी बन बनि को । सांकरी खोर की ओर जहां बैठे चित चोर,
हरिन से नैना हरि के मन हरन को । सरस सुठार सार हार गज
मोतिन के, किये हैं सिंगार तन वरन वरन को । चंचल चपल
चपला के भ्रम चौंकि परै, चाहि चक चौंधी लागे मोहन के मन
को ॥३॥

दोहा—बोले सुबल सु साँवरे, कही कान कहु बात ।

कामिनि लीने कोटि शत, को दामिनि सी जात ॥४॥

क०—घेरो आन नीको सब सखन सों साँवरे हो, नेकु फिर हेरौ
कित जात ऐसी साज की । नवल किशोरी गोरी थोरी वैस भोरी
सब, तिनहुँ में मानों एक मूरति है लाज की । बैठे घाट दानी
छाड़ दिये जात आना कानि, जानि न सयानी कोऊ आपते हूँ
काज की । निपट प्रचंड वन करत अखंड केलि, सुरति है तुम्हें
कछु मन्मथ के राज की ॥५॥

दोहा—ललिता बोली लाल सों, लोइन कछुक रिसाय ।

जो तुम घट दानी भये, तो दैहैं दान चुकाय ॥६॥

क०—कौन मनमथ कौन तुम कहा जानें हम, ऐसी ऐसी बातें कौन
गुरु के सिखाये हौ । भली भई तादिन ते आज सुधि लीने मोहि,
चोर हरि तीर के कदं व पर छाये हौ । अब कित जैहो दान
उलटो ही दैहौ कछु, ते न हम होंहि जिन बनठन आये हौ ।

क०-माधुरी लता में अति मधुर विलासन की, मधुकर आनि
लपटानी सब सखियाँ । दुलहिन दूलह के फूत के विलास कछु,
वास लै लै जीवति है जैसे मधु सखियाँ । ऐसे दाव बार बार
माँगत विधाता जू पै, कुंज केलि माधुरी में कीजे जल भखियाँ ।
दान मिस आँनि कछु दंपति को सुख भयो, एसो दिन दिन देखों
सुख मेरी अखिया ॥३३॥

दोहा—सुनै सुनावे जो कोऊ, दान माधुरी रूप ।

मन बाँझित फल दुहुन को निरखै सदा सरूप ॥३४॥

दानकेलि जो मन वसे, ताहि न और सुहाय ।

तजि वृन्दावन माधुरी, अंत कहूँ नहीं जाय ॥३६॥

❀ इति दान माधुरी समाप्त ❀

अथ मानमाधुरी

दोहा—कृष्ण रूप चैतन्य घन, तन शत मुकुर प्रकाश ।

सदा मनातन एक रस, विहरत विपिन बिलास ॥१॥

एक समै रस रास में, रसिक रसीली संग ।

दामिनि ज्यों दमके दुरै, प्रिया पिय के अंक ॥२॥

निरखत निज प्रतिविम्ब तन, मन संभ्रम में आनि ।

उठनि उठी मन मान की, और त्रिया संग जानि ॥३॥

चपल चली तेहि ठौरते, कीनो कठिन सुभाय ।

बैठी रही रिसाय कै, गरब सिंहासन छाया ॥४॥

स०-ठाड़े रहै इकसे जकसे, न कहें कछु काहु खरे रुचि जैसे ।

तोलों कहूँ निरखे ललिता, तब पूँछति आज कहाँ कुचितै से ॥

लाइहों जाय लिवाय मनाय, हँसाय खिलाय करो सुचितै से ।

नेकु लों धीर धरो मन में, तब सैन में बैन कहै रुचि तैसे ॥५॥

मैं तो कछु न कह्यौ उनसों, उन काहे सों मान महा मन ठान्यौ ।

कै कछु नितंत रासमें काहु को, मो कर सों परस्यौ कर जान्यौ ॥

रंचक दोष को लेश कहूँ, नहि हों अपने हिय हेर हिरान्यौ ।

मोते न चूक परी अचकैसी, ए तेरी सों तोते कहा कछु छान्यौ ॥६॥

कान्ह सबै कछु जानत हों, तुम जैसे हो तैसे कहाँ लों बखानों ।

जो कोऊ रावरे की समझै नहीं, तासों बनाय के बातनि वानों ॥

हों हित की चित की सब जानति, चातुरता एहि और सों ठानों ।

और सबै है याचक कहों, नहि जाति भले सब के मन मानों ॥७॥

जो तुम हीं यह बात कही, उनसों कहि दोष कहा कहि दीजै ।

तकिये जहाँ जाय सहाय को आपुन, वै उलटे परै तौ कहा कीजै ॥

ओर चकोर की चंद तपै तब, चाह के ऐसे खरो तन लीजै ।

मेरो कहा बस है तुम सों, जो बसी तुम्हरे जिय तैसो ही कीजै ॥८॥

बैठि रहौ छिन मौन ह्वै मोहन हों उनके मन की सब लाऊँ ।

सोधि सबै उनकी बतियाँ पुनि सों तुम से सब आनि सुनाऊँ ॥

मोहि न अंतर है उन सों, कछु आनि निरंतर अंक बसाऊँ ।

देहु सबै सुख तैसीय भाँति, पै जो कछु बात अकोर हों पाऊँ ॥९॥

कौन अकोर जो दिये तुमें, सम देवे को हों चित ठाठ ठग्यौ हों ।

जो कछु है सब सोंज तिहारी, तिहारी बांह के सु छांह छ्यौ हों ॥

रास बिलास हुलास सबै रस, या सुख को तुम ही ते भयो हों ।

और कहाँलों कहाँ तुमसों, तुम तो बिन मोलन मोल लयो हों ॥१०॥

दोहा—तब ललिता तेहि ठौर ते चली चपल अकुलाय ।

जहाँ लड़ैती मान कर, बैठी जतन बनाय ॥११॥

यह तो निपट अनीति, पय प्यावत तन को डसे ।

करि कारे सों प्रीति, बहुरि निबाहो होय क्यों ॥२१॥

क०—कारे ही तो निपट तिहारे प्यारी देखिये, भूषन बसन हेरि हिये कोंधि जात है । वन बन डोलति हो देखत न वन सुख, बोलति कालि कोकिला श्रवन सिरात है । खंजत से नैनन में अंजन विराजै कारौ, पटतर देत कछु और न समात है । प्रान हूते प्यारे कारे तन में उजारे कारे, आँखिन के तारे कारे टारे कहूँ जात हैं ॥ २२ ॥

क०—आँखिन दिखाय तुम आँखिन के तारे भए, मन बच करि अब कारेन सों डारिये । कपटी कुटिल डीठ जहाँ लों कठोर सब, पट तर दैवे को न और सम करिये । कारेन सों कारे विधि एई पै संवारे अब, इनके ढिगार है कै नेंकु न निकरिये । बासते बिचारेहू जो एक ही वासक दीजै, कारे बिसहारे सों बचाय पाँव धरिये ॥२३॥

सो०—जो पै मन उरभाय, तो पाँय बचाय क्यों चलै ।

तन हरुवो चल जाय, मन गरुवो कैसे चलै ॥२४॥

मन तौ गरुवो आहि, पै लैन हार लै जायगौ ।

कारे डसे न ताहि, जो मन गौरी लै चली ॥२५॥

क०—दामिनी को मन अब कैसें कै निकारयो जात, अरु भे हैं काहूँ भाँति कारे नव घन सों । नलिनी की हिलग परी है अब अलिन सों, चलत न देत रोकि राखे है दलन सों । कनकलता की प्रीति कैसे कहि परत है, कौन भाँति लपटी तमाल श्यामतन सों । कारे और गोरे को संजोग बनि आयौ अब, अनबन होत क्यों विधाता के बरन सों ॥२६॥

क०—ठाली है न कौऊ बैठे बैठिबा उठायो करौ, तुम ही तो दिन बहरावो टारा टोरी सों । हमें तो आयवो दिन दिन यहि मार्ग

अहो, दूध दही भरे लीने कनक कमोरी सों । अपरस ऐवो कुंज देवी दरसन हित, परसजु कीनो काहु नवल किशोरी सों । निकसेगी एँड बेंड रोस सब दयौसन कौ, छूटि हैं न बाँधे फिर दीनी दाम डोरी सों ॥२७॥

दोहा—समझि न बोलति हो कछु, डोलति हो कछु ढीठ ।

फेर न ऐसी कीजिये, आज बची हो नीठ ॥२८॥

हम यह तो मारग चली, करो कोउ कछु आय ।

अपने मदन नरेश कौ, देउ बनीती जाय ॥२९॥

क०—नवल कुँवर अलवेलौ अलवेली भाँति, लाल हीं लकुट लैकें रोको मग आनिकै । जाँनि कैसे पैहौ अब आनि मनमथ जू को, बहुत बचे हो कछु और जिय जानिकै । सखन सों बोले सब खोरि तुम रोकौ जाय, जैसे कोऊ निकसै न दीने विनु दान कै । प्यारी जूको पानि गहि हंसि बोले प्रानपति सदन तो जैहा सुख मदन सों मानि कै ॥३०॥

क०—प्यारे के परस होत उपज्यौ सरस रस, स्वरभंग बेपथ प्रस्वेद अंग ढरक्यौ । हरष सों फूल्यौ तन तरकी कंचुकी तनि, चखन चलत सों सिंगार हार सरक्यौ । कंकन किंकिणी कटि नीबहूँ सिथिल भये, लोचन कपोल भुज बाम उर फरक्यौ । चिबुक उठाय कै जु ऊँचै तब कीनों मुख, धीरज न रह धरधर हीयो धरिक्क्यौ ॥३१॥

क०—प्रेम बस जानि प्यारी नवल किशोरी गोरी कर गहि लाये कुंज माधुरी भवन में । विविध सरोजन की सेज रुचि रुचि राखी त्रिबिध बहत सुख सीतल पवन में । अंग अंग गोरी को सरस अति गोरस ते, मथ रस लीनो मृदु माखन कवन में । सबनि सो कह्यौ तुम सौरभ सुगंधि लाओ, आप रस बस भए रसिक रमन में ॥३२॥

भूषन बसन सखन समेत आजु लैहों, तन छोर चोर नीकी भाँति तुम पाये हों ॥७॥

सो०—हम कीने सब चोर, आपुन साधु कहावहीं ।

आयो जुग को ओर, अबला सवलमई भई ॥८॥

साधु होहि नहि चोर साधु कबहूँ न भए ।

चीर हरन की ठौर, जानत हैं सब साधुता ॥९॥

क०—बोले मन मोहन दुहाई मनमथ जू की, सब ग्रंथ लैहो पंथ तैसे अनुसारि हों । पेंडे हूँ की कहे एतौ ऐंडो बेंडो होत जात, काहे को डरावो डराये ते लों न डरिहों । बन के सुमन फल राखे तन में दुराय, मेरो मन जाने कहि कहां लों उचरिहों । सबनि उधारि देखौ साधु और चोरन के आज निरवारो सब नीकी भाँति करि हों ॥ १० ॥

क०—घर में न कोऊ जाको वसन उधार देखो, जो पै कछु अब ही ते मन ललचायौ है । भली कीनी आज ही जगतिन को रूप धर्यौ, कालि ही तो नंदगांव बाँह दै बसायौ है ॥ नाम लेत बन को न लाज कछु आवति है, वृंदावन राधा जू को वेदन में गायौ है । फल फूल रुखन की जाय रखवारी करौ, कोऊ बाग बाबा जू ने बिसाले लगायौ है ॥११॥

दोहा—अबलों हों चुप हूँ रह्यौ, अब तो रह्यौ न जाय ।

एक एक ते टेक यह, लेंहों दान चुकाय ॥१२॥

कहूँ करौ जो करि सकौ, तोहि बवा को आन ।

नीक दान चुकाय हों, पै नेक बास की कानि ॥१३॥

क०—भली भई आपने बनाए हू की कानि करी, पीठ दिये जात कित ढीटनि सों भेटिये । प्रथमहि घाट आय बैठे हों शपथ मोहि, आजु तो सकारें ही ते नाटि मेरी भेटिये । बोहनी की बार बार कौजिये न कोई आज, बड़े ही सकारे काहू भले सों सहेटिये ।

थोरौ ही सौ दीजै अरु कछु मनुहार कीजै, घाट घट बारे न सों काहे को खखेटिये ॥१४॥

क०—जो पै कछु बस है तो खखेटे को अंगेठो करौ, वेद हो सहेटो आनि बड़े घटवार सों । भये हो सपूत अति पूत ब्रजपति जू के, नैंक न डरत कुल ढरन की ढारसों ॥ दैहों न गिन के मनि मानिक अनेक धन, जननी की गोद भर राखिवो संभारि सों । धरिवे कौं सोंज बड़ो मटुका गढाय लीजो, कहि कै पठैयो काहू कुल के कुम्हार सों ॥१५॥

दोहा—ज्यों ज्यों हम इन सों डरें, त्यों त्यों अति इतरात ।

लेहु मटुकिया सीस ते, रोको मारग जात ॥१६॥

ऐसे कोऊ नहि सुनी, जो रोके मग मांहि ।

सपने हू नहि छुई सकै, कुँवरि की छांदि ॥१७॥

क०—छांदि तो न छुईहों गहि बाँह कुंज भवन में, राज मनमथ जू को आगे अनुसारि हों । बरन बरन फल फूल के हरन किये, हीरा मनि मोतिन के हार सब हारि हों । बाहुनसों बांधि साधि कुसुम कोदंड सर, होहु न उदंड फिर ऐसे दंड धारि हों । जैसे जैसे मन्मथ नरेश जू निदेस दैहैं, तैसे तैसे रसना सिथिल पान करिहों ॥१८॥

क०—घर ही में गढ़ि गढ़ि बातन के ढेरि करौ, जो जो मन उपजै सांभ और सबेरे को । ऐसी है न कोऊ कैसी जैसी तुम चाहति हो, एक एक सरस है उत्तार तिहारे को । तो लों है कुशल जौ लों सूधी सब चाहति हैं, फिर तेरे हाथ कछु आवत न पारे कों । अब ही तो गंडन पै पांडु को बरन भयो ऐसी मुख दीखत है दंड दैन हारे को ॥१९॥

सो०—उपजत है जिय मांहि, इन गंडन पै पंडुता ।

जाने सोई जान जाकी प्रीति प्रगट भई ॥२०॥

चित चिता चाहति धरनि, चितवत नीची नारि ।
 कहो सखी केह हेतु ते, पहिरे पलट सिगारि ॥१२॥
 क०-मो पै न इन के अब जी की कछु जानी जात, काहेते कछु न
 आज ऐसे मन धारयो है, । अति अनबोली आज बोलहू न बोले
 कछु, आवत ही अंग नील बसन उतारयो है । फोंदा मखतूल
 पोती कंठ ते उतार धरी, पोंछ पोंछ नैनन ते अंजन निकारयो
 है । मृगमद रेखा कोऊ राखी है न उर पर, बास हूँ के डर सुवास
 धोय डारयो है ॥१३॥

क०-बन देखे मन कछु अति कल मली होत, घन देखे नैनन में नीर
 भरि आवहीं । केकि किलकारे मृग रीस कै निकारे सह, मधुकर द्वारे
 हूँलों आवन न पावहीं । कोकिला की बानी सुनि कान मूँदि
 बैठति हैं, काहूँ कै कहते मन अधिक रिसावहीं । नील कमलन
 देखि बिकल हूँ जात तनु, काहूँ सों न कहि बात मन की जना-
 वहीं ॥१४॥

सवैया—

हेलिहो आज कहौ कछु काहिते, कौन सों रिस कियो है यहाँ लों ।
 नैक सुवंक बिलोकनि में सब, जंगम हूँ जड़ जात जहाँ लों ।
 बैतु बिना रिसते सब हूँ रहे, तासों कहा अब कीजै कहाँ लों ।
 जानति हो तुमही जो सर्वविध, हों तुम सों जो कहोंगीं कहाँ लों ॥
 मानियेजू अपने मन की सब, मोसों कहा गहि मौन रही हौ ।
 रोस तो बासों है औरनिसों रिस, ऐसी कुटेव कहाँ ते गही हौ ।
 कबहूँ जिन ताहि पत्याहु कहूँ जो कछु तुम सों इन ऐसी कही है ।
 पीतम सों हसिये लसिये मिलि, जीवन को फल सोई सही है ॥१६॥
 हों नहि जाय हँसों बिलसों मिलि, जो मन में अनुराग नयौ है ।
 जीवन को फल लेहु सबै मिलि, जो कछु ऐसो विवेक भयौ है ।

हूँ फिर भूलि कै कारो कहूँ न कहूँ मन में यह नैम लियौ है ।
 खेलो हँसो सुख लेहु सबै सखि सोंज सबै तुम ही को दियौ है ॥१७॥
 पहले सब सोच बिचार कै देखिये, तो इतनी रिस औरसों कीजे ।
 भूँठो ही दोष लियो मन में धरि आप दुखी दुख और न दीजै ।
 जो छिन जाय सो है कितहूँ फिरि, ऐसी छटा छिन ही छिन छीजै ।
 देखौ विचार बिचक्षण हो अब, दाव न दोष नहीं अब दीजै ॥१८॥
 देखहि सोंधि सम्हारि सबै, गुन कारेन के न कहूँ बनि आए ।
 जा तन की उपमा घन दीजत, सो संग दामिनि डोले दुराए ।
 भोर भ्रमें न रमें रस काहूँ सों, एक तजै मन एक सों लाए ।
 कालिमा कज्जल जो परसै हित, छाँड़ि न ताहि कलंक लगाए ॥१९॥
 बैठि कहा कविता सी करौ, सुधि है कछु साँबर के तन की ।
 छिन ही छिन देह की और दशा, जो उठी कनिका श्रम के कन की ।
 मैं तब ही तेहि भाँति तजी, अबलों गति कौन भई पिय की ।
 तुम तो मुख मूँदि कै मौन गद्यौ, कछु जानति हो उनके मन की ॥
 जानति हो उन के मन की यह, नैक नहीं जिय में कठिनाई ।
 माखन ते मृदु मँनहु ते मृदु, नैक त्रिया निरखे ढरिजाई ।
 या ब्रज में बनिता जितनी वर, वानिक तो सब सो बनि आई ।
 जाहि मिलै मिलि जाय तिही रंग, ऐसे हिऐ के हैं कोमलताई ॥२१॥
 सो०-प्रगट दिखाऊँ आनि, और सखी हम सी सबै ।

मन माखन ढरि जाँहि, तुब मुख भानु प्रकाशते ॥२२॥
 स०-बात लई इनके मन की तब लालन पै ललिता चलि आई ।
 सूधि होत कहूँ रिसके बस, काहुँ कुमंत्रणि सीख सिखाई ।
 बैठि हुती अनबोलन बोलति, मैं छल कै बहु भाँति बुलाई ।
 दूर करो मनते दुख दारुण, बेगि चलौ बलि देहुँ दिखाई ॥२३॥

दोहा—चले लाल तेहि ठौर, जहाँ हठीली हठ कियौ ।
कहत न मुख सों और, कर जोड़े ठाड़े रहें ॥२४॥

स०—लालन आए हैं लाड़िली जु नैंक लोइन कोरन सों इन हेरौ ।
नैंक कै मान कहा घट है गई, माधुरी कुंज में मोहन तेरो ॥
कीजिये सोई जो है जिय में अहो, नैंक चितै नहीं होय निबेरौ ।
नीचे ही चाहति चूक कहा परी, ए तो सदा सखी चेरी को चेरौ ॥

सो०—यह ठाड़े कर जोरि, तुम न करत सोंही दगन ।
फिर बैठी मुख मोरि, चितयौ नैंक न चाह सों ॥२६॥

क०—आये सनमुख लाल लोचन सजल कीने, माला एक मल्लीकी
नवल कर लीने हैं । आगे लै लै धरत करत मनुहार अति, पांइन
परत कर कैसे डारि दीने हैं । मोहन मनावत उठावति चिबुक गहि,
जतन बनावत न सोंहै दग कीने है । छुट न सकात पै न रह्यौ
पुनि जात जिय, आत अकुलात जैसे मीन जल हीने हैं ॥२७॥

क०—अहो जू हठीली हठ छांड़ि दीजै रस कीजै, दीजै लाल मिठ
बोले अब बोलियत हैं । नैंकहूँ सुरति आय शोक न रहत कछु,
नैंक मुसकान में सुधासो पीजियत है । जाको मुख देख सुख
संपत सरस आवे, ऐसे मन मोहन सों मान कीजियत है । मान
की कहा है तन मन प्रान वार दीजै, देखी देखी याको मुख देखी
जीजियत है ॥२८॥

क०—कौन वरजी है मुख देख जीयो देखिकरो, और सब कीजिये
जु कछु मन भाई है । कंठ सों लगावौ बतराऔ सुख पाऔ जिय,
साँवरा सरूप तुम्हें सदा सुखदाई है । सबही सों खेलौ हंसौ
देखो सुख लागत है, हिये की हिलग कहा हम सों दुराई है । जा-
नति हों सबै कछु जैसी तुम बीतति है, इनकी तिहारी बात नीकी
वनि आई है ॥२९॥

क०—जैसी हम तैसी तुम नीकी भाँति जानति हौ, भली बुरी

प्यारी जू की पांइन की चेरी हैं । इनहूँ की बातन में सोधी कै
सपथ लै लै, कबहू न और त्रिया हाँसीहू में हेरी है । हों तुम कहत
जोई सोई तुम मान लेउ, मेरी बात कबहूँ न सुपने हू फेरी है ।
भूँठे ही अदोष नीकों दोष जिनि देहु कछु, तेही साँह लीनी जेई
कठिन करेरी है ॥३०॥

क०—काँख में जु चोरी मुख सोहैं खात होत कहा, ऐसी ऐसी
बातें सब कलिकी निशानी है । मेरे आगे अबही तो अंगनि दुरा-
वति हैं, मोकों यह जानति हैं ऐसी ये अयानों है । छाती सों
लगाए डोलें छवीली कुँवर एक, छत सों छिपावें छवि मोसों
कहा छानी है । नैन और बैन और हिये और जिये और, ठौर
ठौर और जाके जी की सब जानी है ॥३१॥

क०—नैननि में बैनन में तन मन ठौर ठौर, रोम रोम प्यारे जू के
तुही रमि रही है । और कौन छुइ सकै छवीली कुँवर बिन, नीके
कें निहारि देखौ मैं जु तोसों कहीं है । तेरो प्रतिबिंब तन सदा
प्रति-बिंबित हैं, तेरी तो हिलग में गहन कछु गहो है । जो न
पतियाऔ तो नैंक करि परसि देखौ, जानौ यब भूँठी साँवो
आज ही की सही है ॥३२॥

क०—तब कछु प्यारे लाल कोनौ है जतन एक, नख सिख लाल
ओढ़ि लीनों पट भीनों है । तैसी ये चरन चलै मोरि चलै अग-
बार, प्यारी जू के पांइन परस आनि कीनों है । कहा भ्रम गहि
रही जानत काहू भ्रमाई, उनहीं के काजे ऐसी कहा हठ लीनों है ।
मन बच क्रम करि तिय तो तुम्हें हो जानो, मैं तो तन मन प्रान
तुमहीं को दीनों है ॥३३॥

क०—तिरछी है चाही तब संभ्रम सों मिटि गयो, हँसि मुसिकाय
दियो सोंहै मुख करि कें । पट में न प्रतिबिंब देख्यौ निज

अंगनि कों, कछुक लजाय रही नीचै चख दरिकें । किहूँ किहूँ
काहूँ भाँति हास करि प्रानपति, कर गहि प्यारी लै उठाई पांय
परिकें । रसिक रसीली रस रास में सरस दोऊ, अरस परस
मिलि खेलें अंक भरिकें ॥३४॥

क०—माली नव मदन तरुनी तन आलवाल, जतन जुगति सों जो-
बन बीज बोयौ है । उपज्यौ है अंकुर सनेह को सरस अति, सुरति
के मेह सों सुनित सरसायौ है । मूल प्रतिकूलता सुमन फूल फूलि
रह्यौ, हाव-भाव पल्लव सघन छाँह छाँयौ है । मधुरते मधुर लग्यौ
है एक मान फल, सोई जाने सुख जिन लोभी रस लयौ है ॥३५॥

सो०—बिन सनेह नहि मान, मान बिना न सनेह कछु ।
जैसे रस मिष्टान्न, नोन सहित रोचक अधिक ॥३६॥

जैसे जहाँ सनेह, मान तहाँ तैसो बने ।

ज्यों बरपे नित मेह, साख न शूर प्रकाश बिनु ॥३७॥

मिश्री मान समान, छूवत कर लागत कठिन ।

जब कीजै रस पान, तब जानै रसना सरस ॥३८॥

दोहा—नव रस सब नीरस लगे, सब रस को सिरमौर ।

मान माधुरी रस बिना, मन न रसै रस और ॥३९॥

मान माधुरी जो सुनें, होय सुबुद्धि प्रकास ।

प्रेम भक्ति पावै बिमल, अरु वृन्दावन वास ॥४०॥

मान माधुरी जो पढ़ै, सुने सरस चितलाय ।

राग मार्ग में चित रहे, राधाकृष्ण सहाय ॥४१॥

❀ इति श्री मानमाधुरी समाप्त ❀



अथ होरीमाधुरी

राग धनाश्री

हो हो होगी बोलहीं, नवल कुँवर मिलि खेलें फाग ।

आगम सुनि ऋतुराज को, उपज्यो मन में अति अनुराग ॥१॥

बरस दिवस लागी रहै, या सुख की आसा जिय माँहि ।

जो क्यों हूँ विधिना रचै, सबै द्यौस होरी है जाँहि ॥२॥

अति हुलास हिय में बढ्यो, अब कापै यह रोक्यौ जाय ।

उँमगि चलयो रस सिंधु ज्यों, अपनी मर्यादा विसराय ॥३॥

सुबल सुबाहु सखा सबै, जोर लियो निज संग समाज ।

अपने अपने घरन ते निकसे कर खेलन के साज ॥४॥

एक सखा हो हो करै, एक करै कछु उलटि रीत ।

मधुमंगल नाचत चलै, गावत हैं होरी के गीत ॥५॥

एक दिगम्बर रूप धरे, नख सिख अंग विभूत चढ़ाय ।

एक कोउ कामिनी भई, चले दुहुँन की गांठ जुराइ ॥६॥

ताल पखावज बाजहीं, बाजत रुँज मुरज सहनाइ ।

ढफ दुन्दुभी अरु भालरी, रह्यो कुलाहल सब ब्रज छाड़ि ॥७॥

सैनन ही में साँवरे, कह्यो सबनि सों यों समुझाय ।

आज भैया या साज सों, खेलें बरषाने में जाय ॥८॥

आये बट संकेत में, तब कीनी मुरली की घोर ।

श्रवन सुनत प्यारी राधिका, चोंकि परी चित रह्यौ न ठोरि ॥९॥

निकसीं संग समाज लें, खेलन को सब साज बनाय ।

पावस की सरिता मानों, उमंगी रस सागर को धाय ॥१०॥

एकन कर गेंदुक सोहै, एकन नवला सी बहु रंग ।

कुँडनि मिलि गावत चली, भोरिन भरी गुलाल सुरंग ॥११॥

सुरमंडल और सारंगी, बीना बहु संग ।
 मधुर मधुर सुर बाजहीं, मदन भेरी डफ चंग उपंग ॥१२॥
 आइ प्रिया पहुँची जहाँ, खेलत नन्दकिशोर ।
 मानों समर संकेत में, रुपै सुभष सन्मुख दोऊ और ॥
 विविध भाँति फूलन गुही, पहले गेंदुक दई चलाइ ।
 मानों रस संग्राम की, आगे दई बसीठ पठाइ ॥
 पिय पिचकारी पुरि कै, दई प्रिया ऊर ऊपरि तानि ।
 अगर अरगजा घोरि के, मुख सोंधो लिपटाइ सानि ॥
 छिरकत चहुँ ओरतें मनहु, मेघ उमडे हु जलरास ।
 गौर घटा अरु साँवरी, वर्षत केसर नीर सुवास ॥
 सब सखियन ढिग श्याम के, दीनों लाल गुलाल उड़ाय ।
 दुरि पाछे है घात सों, गहे कुँवर मन मोहन आय ॥
 एकन कर गाढी गही, एक बनावत चित्र कपोल ।
 एक निडर आँजन लगी नैन कमल दल परम सलोल ॥
 इक सन्मुख मुख चाह ही, एक कहति करि चिबुक उठाय ।
 बहुत दिनन ते आज ही, अब बस परे हमारे आय ॥
 बहुत कहावत हो आपुन कों, आज बरौ जो जाह छुडाय ।
 एक बैननि गारी गावै एक कहत सैननि मुसकाय ॥
 दए सखिन मिलि श्याम के, केसरि कलस सीस ते ढारि ।
 एकन मुरली हरि लई एकन मोतिन माल उतार ॥
 नव केसरि मुख माँडिकें, इक नाचत हैं दै दै करताल ।
 कजरा आँखिन सारि कै, हँसि बोली इक सुंदर बाल ॥
 एकन गहि बेनी गुही, एकन मोतिन माँग सँवारि ।
 उरजन पर कंचुकी कसी, तापर मोतिन माल सुढारि ॥
 तनसुख की सारी अति भोनी, अरु लोनी सोंधे सों सानि ।
 अगर अरगजा घोरि के, पहिरावत प्रीतम को आनि ॥२४॥

नूपुर कंकण किंकिणी नख, सिख भूषण साज शृंगार ।
 सो सुख देखे हीं बनें, अद्भुत सोभा बढी अपार ॥२५॥
 कर पकर धरि लै चलीं, बैठारी प्यारी ढिग जाय ।
 आई नई यह सहचरी, चाहत है देखन को पाँय ॥
 अति प्रवीन गुण आगरी, वीण बजावत परम अनूप ।
 सेवा अंग सिंगार में, सुघर सखी साँवरी स्वरूप ॥
 उत्कंठा तुम मिलन कों, लागि रहत याके जिय माँहि ।
 हँसि भेटहुँ दोउ अंक भरि, जैसे तन मन नैन सिराइ ॥
 अति आनन्द हुलास तें मिलि, सखी दोऊ भरी अंकवारी ।
 जव जान्यो यह भेद कछू तवहिं सकुचि मुसकाइ निहारी ॥
 जो आनंद उर में बाढ्यो एक रसना बरनो नहिं जाय ।
 दिन दिन यह सुख दुहँन को, निरखि माधुरी नैन सिराय ॥३०॥

पद

अति सरस रच्यो वरषानो जू । राजत रमणी कर बानों जू ॥
 जहाँ मणिमय मन्दिर सोहै जू । उपमा कौं रवि शशि कोहैं जू ॥१॥
 नित होति कुलाहल भारी जू । मन मुदित सकल नर नारी जू ॥
 वृषभानु गोप जहाँ राजे जू । कीरत जाके जग गाजे जू ॥
 जब दिन होरी को आयौ जू । न्योँतो नंदगाँव पठायो जू ॥
 सुनि कें मन मोहन धाये जू । सब सखा संग लिये आये जू ॥
 श्री जसुमति न्योँति बुलाई जू । समधि समधानें आई जू ॥
 कीरति आगे हू लीनी जू । मनुहारि बहुत विधि कीनी जू ॥
 आवो निज भवन विराजो जू । वरषानों सकल निवाजो जू ॥
 अति कृपा अनुग्रह कीने जू । हम तो अपने कर लीने जू ॥१०॥
 तुम तौ सब की सुखदाई जू । मुख कीजे कौन बड़ाई जू ॥
 तुम तो यह निज वृत लीनों जू । जिन जोई जाच्यो सोई दीनों जू ॥

यह जस तुम्हरो जग जानै जू । इहि सुख कबि कौन वखाने जू ॥१३॥
 जब कर गहि ढिग बैठारी जू । गावैं गारी ब्रजनारी जू ॥
 तुमको बूझैं एक वाता जू । तुम साँची कह यह गाथा जू ॥
 जब गरग तिहारे आये जू । वह नाम कृष्ण गुण गाये जू ॥
 सुनि वासुदेव करि लेखे जू । वसुदेव कहाँ, तुम देखे जू ॥
 यह सुनि सुनि बात तिहारी जू । अचरज उपजत जिय भारी जू ॥
 औरों शंका जी आवे जू । यह भेद न कोऊ पावै जू ॥
 अति साधु परम तुम पायौ जू । यह पूत कहाँ ते जायो जू ॥
 याके गुन रूप निहारे जू । यह मिले न कुलहि तिहारे जू ॥
 हम सों सब लाज निवारों जू । ऊँचे हैं क्यों न निहारों जू ॥
 कछु कह्यौ हमारौ कीजै जू । हँसि कै सब को सुख दीजै जू ॥
 रहिये कछु दयोस हमारे जू । हम तौ हैं सकल तिहारे जू ॥
 तुम दोऊ एकाहि कर जानों जू । नंदगाँव सोई बरषानों जू ॥
 जैसे कछु नंदहि मानों जू । तैसे वृषभानों हि जानौ जू ॥
 दोउ हैं परम सनेही जू । ये एक प्राण द्वै देही जू ॥
 तब हँसी सकल ब्रजवाला जू । मुसके कछु नंद के लाला जू ॥
 सुन सुन जशुदा मुसकानी जू । बोली कछु मधुरी वानी जू ॥
 बसहि कछु दयोस तिहारे जू । कीरत चलि बसहु हमारे जू ॥
 तब हँसि सकल वृजनारी जू । जशुमति की ओर निहारी जू ॥
 वृज भयो कुलाहल भारी जू । नाचैहि दै दै करतारी जू ॥
 यह रस बरसे वरषानें जू । बिन कुँवरि कृपा को जानें जू ॥
 कीरत जशुमति जशु गायौ जू । वृजवास माधुरी पायौ जू ॥

विलावल

आगम सुन ऋतुराज कों फूली सब वृजनारी जू ।
 बरन बरन सिगार कै तन चंदन चरचित सारी जू ॥१॥

केसर चंदन । वन्दना अरु, घसि लीनी रोरी जू ।
 नव नवला सी फूल की, लियें फूल भरि भोरी जू ॥२॥
 मंगल साजु सबै लियें सब, निकट कुँवर के आई जू ।
 प्रथमहि दिवस वसंत कों, मन हर्षित देत वधाई जू ॥
 गावैं गीत सुहामनें मन, हर्षित नवल किशोरी जू ।
 सब वृज कुशल समाज सों, फिर आई फागुन होरी जू ॥
 ताल मृदंग मिलि बाजहि, रूँज मुरज सहनाई जू ।
 डफ दुंदुभी अरु भालरी, मानों बाजत मदन बधाई जू ॥
 सुन सुन घोष कुलाहलै, जिय सब को सरसान्यों जू ।
 गिरिधर के अनुराग सों, रंग भीज रह्यौ वरषानों जू ॥
 इहि विधि साज समाज लै, सब चली राय जी की पौरी जू ।
 श्री राधा जी के लैन कों, हँसि उठि नंदगानी दौरी जू ॥
 प्रथम हि केसर नीर ले, अंग चीर सबै रंग बौरे जू ।
 मृगमद अरगजा घोर कें, शिर भरि भरि गडुया बोरे जू ॥
 सोंधो सुरंग गुलाल सों, बहु सखि जवाद मिलाए जू ।
 दौर अचानक लाडिली, हँसि महरि वदन लपटाये जू ॥
 छिरकयो सब मिलि धाय कै, तब छलवल सों उठ दौरी जू ।
 जान कुँवार वृषभानु की तव, महरि लई भर कौरी जू ॥
 चुँबत चापति प्रेम सों हँसि, पुन पुन कंठ लगावैं जू ।
 जो कछु आनंद जिय कों, मुख कहत कह्यौ न आवैं जू ॥
 तब मन महि नाना भाँति कै, बहु भूषण वसन मँगाये जू ।
 तौ इन कों हम लेहि जौ, कहो गिरिधर कहाँ दुराये जू ॥
 कछु उँचहि चख चाहैं कें, महरि वदन मुसकाना जू ।
 नागरी सब गुण आगरी, बात हिये की जानी जू ॥
 सब जुवती जानि धाय कें, तब जाय चढ़ी चित्र सारी जू ।
 सकुचत वदन दुरावहीं, हँस गहै जाय गिरधारी जू ॥
 घेर लिये चहुँ और तं अब, छूट हूँ कहाँ पलानें जू ।
 क्यों जुवतिन के बस परे, कहियत अधिक सयाने जू ॥

कोउ बातें भेद की कहि, कानन में उठ दौरी जू ।
 कोउ अचानक आय के तब, लाल लये भर कौरी जू ॥
 काहु नाना भाँति के रचि, चित्र कपोलन कीनी जू ।
 काहु मरवट माँडि के मधि, बेदा रोरी दीनों जू ॥
 काहु नीकी भाँति सों, अंजन नैन बनायौ जू ।
 एक सहज ही चपल कुरंग से, अरु दरक श्रवन लौं आयौ जू ॥
 काहु गहि गुँथी बैनी, रच मोतिन मांग सँबारे जू ।
 तन सुख की सौधे भीनी, सुठि सरस बनाई मारी जू ॥
 चम्पकलता चल आय के जब, चिबुक दिठौना दीनों जू ।
 मोहि रही सब मोहनी, जब रूप मोहनी कीनों जू ॥
 तब नाना बरण अवीर लै, दुरि मोहन बदन लगावें जू ।
 पूरण चंद मनो घन में, नव इन्द्र धनुष सो छावै जू ॥
 केसर दोरी सीस तें भूमि, ढरि ढरि चले पनारे जू ।
 सौधें सुरंग गुलाल सों, सब भरे घरनि के द्वारे जू ॥
 सन्मुख मुखहि निहार के सुख, निरखत कोउ न अघानी जू ।
 गावहि गारी सुहावनी, अति रस सों लपटानी जू ॥
 तब आगे गहि मोहिनिहि, हँसत हँसत तहाँ आई जू ।
 घूँघट सो पट ढाँपि के, पगनि महरि के लाई जू ॥
 यह कन्या काहु राय की तिन आय समरपन कीनी जू ।
 रूप वैस गुण श्याम के, जोट विधाता दीनी जू ॥
 हषित मन आनंद सो तुम, बाँटहु आजु बधाई जू ।
 विधि ते रूप उजागरी हम, कान्ह बधू लै आई जू ॥
 दिहाँस बधू को नाम सुनि तब, महरि गोद बैठारी जू ।
 प्रमुदित आति आनंद सों कछु, विधि तन गोद पसारी जू ॥
 अंचल ओट पसार के कछु, मुख चुँबत मुसक्यानी जू ।
 हँसि परसपर नागरी तब, देखत महरि लजानी जू ॥
 हो हो होरी बोलहीं, नाचत दै करतारी जू ।
 प्रमुदित करत कुलाहल, गावत सब वृजनारी जू ॥

यह ब्रज होरी खेल कों सब, सुख ते सुख न्यारो जू ।
 यह समाज नित माधुरी के, नैक उरतें नहि टारी जू ॥३०॥

राग काफी

हो हो होरी बोलें ॥ ध्रु ॥
 फगुवा मिस ब्रज सुंदरी, जसुमति गृह आई ।
 गावत गारि सुहावनी, सब के मन भाई ॥
 तब ब्रजरानी बोल के, रावर में लीनी ।
 मुसकि मुसकि के कहत हैं, बतियाँ रंग भीनी ॥
 अहो जसुमति भोर ही, हम नोतेँ आई ।
 आज कछु वृषभान जी, तुम बोलि पठाई ॥
 और तुम सों कछु कह्यो है, संदेश जु न्यारो ।
 कन्या हमारी राधिका, हरि पति तिहारो ॥
 मन बच क्रम करि कहत हैं, हम सोंह तिहारी ।
 तुम लागत हम को सदा प्रानन ते प्यारी ॥

फुटकर--

मेरो नवरंग विहारी । बाल बाल जाँउ तिहारी ॥
 लिये संग राधा गोरी । बाले सब हो हो होरी ॥
 गावे गुन गीत रसाला । भावे मोहि नंद को लाला ॥
 बाजे बहु भाँति वजावे । नान रस रंग बढ़ावे ॥
 टेढ़ी सिर पाग सवारी । गति भेद सों भारी ॥
 सोधे मे भीना वागा । सारी रस रेनि निकागा ॥
 सोभा कहां वैन बखाने । माधुरी के नैन ही जाने ॥

मेरे मन का मोहन सांवला । मेरे उर का लटकन सांवला ॥
 हाथ वगुरीया उर वनमाल । चित चुभि रही तेरी लटकनि चाल ॥
 मोर चन्द्रिका साहति सीस । को न करें तेरी मुसिकनि रीस ॥
 माथे तिलक बन्यों हे जराइ । चाहतहीं जु रह्यो ललचाइ ॥
 अलकावलि सोभित वनमाल । लोचन लोभी तेरे परम रसाल ॥
 बेससिरी की लुवि नेकु निहारि । विगारि गये सब तन के विचार ॥

अधर अरुनता कही न जाइ । लोभी चित मेरो गयो ललचाइ ॥
 चिवुक दिठोना दियो वनाइ । दीठि लगे मन दिठिहि आइ ॥
 करन फूल फूले बहु भांति । फोंदा चले मधुपनि की पांति ॥
 प्रीवा वाल्हरी अरु कंट सिरी । बीच बीच मोतिनि की लरी ॥
 बाहून वाजूवंद सुढ़ार । उर सोहत मोतिन के हार ॥
 अंगुरिनि मुदरी सोभित घनो । एक एक तें सुंदरवनी ॥
 जगमगइ चोकी बहु रंग । फेलि रही सोभा सद अंग ॥
 गुंजमाल सरस रस भरी । कवहुँ न निमिषन उरतें टरी ॥
 कटि किंकिनि बाजनि बहु भांति । मानों आई मदन वरात ॥
 पाइन नूपुर मधुरी चाल । वाजे वाजत परम रसाल ॥
 नख सिख लों कीनो तन साज । भानों लटकत आवत गजराज ॥
 कहत माधुरी बचन रसाल । हों वालि बलि तेरी मदन गुपाल ॥

~~~~~  
 रंग हो हो हो हो हो होरीयाँ ।

उत वने नवल किशोर लालन पिय इत वनी नवल किशोरीयाँ ॥  
 वे नवनील श्याम घन सुंदर ए कंचत तन गोरीयाँ ।  
 इनि के अरुन वसन तन राजत इनि के पीत पटोरीयाँ ॥२॥  
 एकनि कर गेंदुक नवलासी ओरु फूलनि भरि भोरीयाँ ।  
 भाजत राजत भरत परस्पर परीरंभन भक भोरीयाँ ॥३॥  
 राखी करनि दुराइ सबनि मिलि केसरि कनक कमोरीयाँ ।  
 छल बल सों दुरि मुख लपटाबत चंदन वंदन रोरीयाँ ॥४॥  
 वाजत ताल मृदंग मुरज उफ मधुर मुरली धुनि थोरीयाँ ।  
 नाचत गावत करत कुलाहल परम चतुर अरु भोरीयाँ ॥५॥  
 फेंटनि भरे हे गुलाल बिबिध रंग अरगजा भरी कचोरीयाँ ।  
 सनमुख दृष्टि बचाइ धाइ करि श्याम सीस पर दौरीयाँ ॥६॥  
 याही रस विलसो निसि वासर वंधे प्रेम की डोरीयाँ ।  
 माधुरी के मन सुख के कारन प्रगटी हे भूतल जोरीयाँ ॥७॥

